मंगल-प्रभात

गांधीजी

नवजीवन

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद – १४

मंगल-प्रभात

गांधीजी

अनुवादक

अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी

जो चीज़ आत्माका धर्म है, लेकिन अज्ञान या दूसरे कारणोंसे आत्माको जिसका भान नहीं रहा, उसके पालनके लिए व्रत लेनेकी ज़रूरत होती है।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद – १४

मुद्रक और प्रकाशक
शांतिलाल हरजीवन शाह
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहली आवृत्ति १००००
पुनर्मुद्रण ८०००

६० पैसे

मार्च, १९६८

निवेदन

गांधीजीके विचार आसान हिन्दुस्तानीमें जनताके सामने रखना 'गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, दिल्ली' के अनेक कामोंमें से एक खास काम है। गांधीजी अकसर आसान भाषामें ही लिखते थे। उन्होंने गुजराती भाषामें जो लिखा है, वह बिलकुल सरल है। फिर भी मुमकिन है कि गुजराती, हिन्दी और दूसरी भाषाओंमें जो शब्द आसानीसे समझे जाते हैं, वे सिर्फ़ उर्दू जाननेवालोंके लिए नये हों। इसलिए अनुवादमें ऐसे शब्दोंके साथ साथ आसान उर्दू शब्द भी देना ठीक समझा है। उम्मीद है कि इस तरह उर्दू जबान हिन्दीके नज़दीक आयेगी और उर्दू जाननेवाली जनता हिन्दुस्तानकी दूसरी भाषाओंका साहित्य भी आसानीसे समझ सकेगी।

६–६–'५८ **काका कालेलकर**

बंबई

अनुक्रमणिका

'मंगल-प्रभात'

गांधीजीने यरवडा जेलका नाम 'यरवडा मंदिर' रखा था। वहां उन्हें बाहरके कुछ अख़बार पढ़नेको मिलते थे और आश्रमसे ख़त भी अच्छी तादादमें आते थे; फिर भी हम कह सकते हैं कि वह फ़ुरसतका समय उन्होंने सूतयज्ञमें, चरखेकी भक्तिमें और गीताके चिन्तनमें ही बिताया। उस अरसेमें साबरमती आश्रमके जीवनमें ज़्यादा जान फूंकनेकी ज़रूरत है, ऐसी मांग दो-एक भाइयोंकी ओरसे आनेसे उन्होंनें आश्रमवासियोंको हफ़्तेवार ख़त लिखना शुरू किया। कोई भी काम शुरू किया जाय तो वह बराबर होता रहना चाहिये, ऐसा गांधीजीका आग्रह होनेसे हर मंगलको सुबहकी प्रार्थनाके बाद एक प्रवचन लिख भेजनेका उन्होंनें संकल्प[१] किया। उस संकल्पका पहला फल है आश्रमके व्रतों[२] पर उनका यह भाष्य[३]। पहले यह 'व्रत-विचार' के नामसे छपा था।

नमूनेदार – आदर्श – कैदीकी हैसियतसे सरकारको सब तरहसे अभय-दान देनेंवाले[४] गांधीजीनें जेलमें से स्वदेशीके बारेमें कुछ भी नहीं लिखनेंका तय किया। इसलिए 'व्रत-विचार' में स्वदेशीकी बात रह गई थी। बाहर आकर उन्होंनें स्वदेशी-व्रत पर एक लेख लिखा, जो 'नवजीवन' में

---

१. पक्का इरादा। २. अहदों। ३. तफ़सीर। ४. सलामती बख़्शनेवाले।

छपा है। अबकी बार वह लेख इसमें शामिल करके आश्रम-व्रतोंकी विचारणा[१] पूरी की है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, ये प्रवचन मंगलवारके प्रभातको लिखे जाते थे, इसलिए इस प्रवचन-संग्रह[२] का नाम 'मंगल-प्रभात' ही रखा गया है। हमारे क़ौमी जीवनमें जब निराशा[३] का घोर साम्राज्य फैला था, तब जिन व्रतोंने राष्ट्रीय जीवनमें आशा, अपने-आप पर भरोसा, फुर्ती और धार्मिकता[४] की हवा पैदा की, उन्हीं व्रतोंने एक नयी संस्कृति – नये तमद्दुनका मंगल-प्रभात शुरू किया, ऐसा अगर हम मानें तो वह कुछ ज़्यादा न होगा।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

१. तफ़सीर। २. मज़मूआ। ३. मायूसी। ४. दीनदारी।

१

सत्य

ता. २२–७–'३०
सुबहकी प्रार्थनाके बाद

हमारी संस्था[१]का मूल ही सत्यके आग्रहमें, सचाई पर क़ायम रहनेमें रहा है। इसलिए मैं सत्यको ही पहले लेता हूं।

'सत्य' शब्द सत्‌से बना है। सत् यानी होना। सत्य यानी हस्ती। सत्यके सिवा और किसी चीज़की हस्ती ही नहीं है। परमेश्वरका सही नाम ही 'सत्' यानी 'सत्य' है। इसलिए परमेश्वर 'सत्य' है ऐसा कहनेके बजाय 'सत्य' ही परमेश्वर है ऐसा कहना ज़्यादा ठीक है। (लेकिन) राजकर्ता या सरदारके बग़ैर हमारा काम नहीं चलता। इसलिए 'परमेश्वर' नाम ज़्यादा चल पड़ा है और चलेगा। लेकिन सोचनें पर तो (लगेगा कि) 'सत्' या 'सत्य' नाम ही सही है और वही पूरा अर्थ देनेंवाला है।

और जहां सत्य है वहां ज्ञान[२] — शुद्ध ज्ञान — है ही। जहां सत्य नहीं है वहां शुद्ध ज्ञान कभी नहीं हो सकता। इसलिए ईश्वर नामके साथ 'चित्' यानी ज्ञान,

---

१. अंजुमन। २. इल्मओदानिश।

इल्म शब्द जोड़ा गया है । और जहां सत्य ज्ञान है वहां 'आनंद' होता ही है; शोक, रंजोग़म हो ही नहीं सकता । और सत्य सदा–हमेशा है, इसलिए आनंद भी हमेशा है । इसीलिए ईश्वरको हम सच्चिदानंद (सत्-चित्-आनंद) नामसे भी पहचानते हैं ।

इस सत्यकी भक्तिके ख़ातिर ही हमारी हस्ती हो । उसीके लिए हमारा हरएक काम, हरएक प्रवृत्ति हो । उसीके लिए हम हर सांस लें । ऐसा करना हम सीखें तो दूसरे सब नियमोंके पास भी आसानीसे पहुंच सकते हैं; और उनका पालन भी आसान हो जायगा । सत्यके बग़ैर किसी भी नियमका शुद्ध पालन नामुमकिन है ।

साधारण तौर पर सत्य यानी सच बोलना इतना ही हम समझते हैं । पर हमनें तो विशाल अर्थमें[१] सत्य शब्दका इस्तेमाल किया है । विचारमें, बोलनेमें और बरतनेमें सचाई ही सत्य है । इस सत्यको पूरा-पूरा समझनेंवालेके लिए जगतमें और कुछ जाननेंको नहीं रहता, क्योंकि समूचा ज्ञान उसमें समाया हुआ है यह हमनें ऊपर देखा । उसमें जो न समाये वह सत्य नहीं है, ज्ञान नहीं है; फिर उसमें सच्चा आनंद तो हो ही कैसे सकता है?

अगर इस कसौटीको बरतना हम सीख जायें, तो हमें तुरन्त मालूम हो जायगा कि कौनसा काम करने जैसा है और कौनसा छोड़नें जैसा; क्या देखनें लायक़ है और क्या नहीं; क्या पढ़ने जैसा है और क्या नहीं ।

---

१. बड़े मानीमें ।

लेकिन सत्यको, जो पारसमणि जैसा है, जो कामधेनु जैसा है, कैसे पाया जाय? उसका जवाब भगवानने दिया है: अभ्यास[१]से और बैरागसे। सत्यकी ही चटपटी अभ्यास है; उसे छोड़कर दूसरी सब चीज़ोंके बारेमें बिलकुल उदासीनता-लापरवाही बैराग है। फिर भी हम देखते रहेंगे कि जो एकके लिए सत्य है वह दूसरेके लिए असत्य है। इससे घबरानेका कोई कारण नहीं है। जहां शुद्ध कोशिश है वहां अलग अलग दीखनेवाले सब सत्य एक ही पेड़के अलग अलग दीखनेवाले अनगिनत पत्तोंके समान हैं। क्या परमेश्वर भी हरएकको अलग अलग नहीं दिखाई देता? फिर भी वह एक ही है यह हम जानते हैं। लेकिन सत्य नाम ही परमेश्वरका है। इसलिए जिसे जैसा सत्य दिखाई दे उसके मुताबिक़ वह बरते इसमें दोष[२] नहीं है। इतना ही नहीं, वही उसका फ़र्ज़ है। फिर ऐसा करनेमें कोई ग़लती होगी भी, तो वह ज़रूर सुधर जायेगी। क्योंकि सत्यकी खोजके पीछे तपस्या होनेसे ख़ुदको दु:ख सहना होता है, उसके पीछे मर मिटना होता है। इसलिए उसमें स्वार्थ[३] की तो गंध भी नहीं रहती। ऐसी नि:स्वार्थ खोज करते हुए आज तक कोई ग़लत रास्ते अख़ीर तक नहीं गया। ग़लत रास्ते गया कि उसे ठेस लगती ही है; और फिरसे वह सीधी राह पर आ जाता है। इसलिए ज़रूरी है सत्यकी आराधना यानी (सत्यकी) भक्ति। और भक्ति तो सिरका सौदा (शीश तणुं साटुं) है; या वह 'हरिका मार्ग' होनेसे उसमें कायर-

१. मश्क। २. ग़लती। ३. ख़ुदग़रज़ी।

डरपोकके लिए स्थान नहीं है, उसमें हार जैसी कोई बात ही नहीं है। वह तो मर कर जीनेका मंत्र है।

पर अब हम क़रीब क़रीब अहिंसाके किनारे आ पहुंचे हैं। उसका विचार हम अगले हफ़्ते करेंगे।

इस मौके पर हरिश्चंद्र, प्रह्लाद, रामचंद्र, इमाम हसन-हुसेन, ईसाई संतों वग़ैराके दृष्टान्तों[1] का हमें चिंतन[2] करना चाहिये। दूसरे हफ़्ते तक बालक-बड़े, स्त्री-पुरुष सब चलते, बैठते, खाते-पीते, खेलते, सब कुछ करते, यह विचार–चिंतन करते ही रहें और ऐसा करते करते निर्दोष नींद लेनेवाले बन जायं, तो क्या ही अच्छा हो! वह सत्यरूप परमेश्वर मेरे लिए रत्न-चिंतामणि (मनचाहा देनेवाला तिलस्माती रत्न) साबित हुआ है; हम सबके लिए वह वैसा ही साबित हो।

---

१. मिसालों। २. ग़ौर।

२
अहिंसा

ता. २९–७–’३०

मंगल-प्रभात

सत्यका, अहिंसाका रास्ता जितना सीधा है उतना ही संकरा – तंग है; तलवारकी धार पर चलनें जैसा है । नट लोग जिस डोरी पर एक निगाह रखकर चल सकते हैं, उससे भी सत्य, अहिंसाकी डोरी पतली है । ज़रासा ग़फलत हुई कि नीचे गिरे ही समझो । पल-पलकी साधना[1] से ही उसके दर्शन हो सकते हैं ।

पर सत्यके पूरे दर्शन तो इस देहसे नामुमकिन हैं । उसकी तो सिर्फ़ कल्पना ही की जा सकती है । छनजीवी[2] देहके ज़रियें शाश्वत[3] धर्मका साक्षात्कार — दर्शन संभव नहीं । इसलिए आख़िरकार श्रद्धा[4] का उपयोग तो करना ही पड़ता है ।

इसीलिए जिज्ञासुनें — जाननेंकी इच्छा रखनेंवालेने — अहिंसा पायी । मेरी राहमें जो मुसीबतें आयें उन्हें मैं झेलूं, या उनके लिए जितना नाश[5] करना पड़े वह करता जाऊं और अपना रास्ता तय करूं? ऐसा सवाल जिज्ञासुके सामनें पैदा हुआ । अगर वह नाश करता चला जाय तो वह मार्ग

१. तपस्या, रियाज़। २. क्षणिक। ३. हमेशाके। ४. अक़ीदा, ऐतकाद। ५. दूसरेकी तबाही।

तय नहीं करता, लेकिन जहां था वहीं रहता है ऐसा उसने देखा । अगर मुसीबतें झेलता है तो वह आगे बढ़ता है । पहले ही नाशके वक़्त उसने देखा कि जिस सत्यको वह ढूंढ़ता है, वह बाहर नहीं बल्कि उसके भीतर है । इसलिए वह ज्यों ज्यों नाश करता चला जाता है, त्यों त्यों पिछड़ता जाता है, सत्यसे दूर हटता जाता है ।

चोर हमें सताते हैं तब उनसे बचनेके लिए हम उन्हें सज़ा देते हैं । उस क्षण वे भाग ज़रूर जाते हैं, लेकिन दूसरी जगह डाका डालते हैं । लेकिन वह दूसरी जगह भी हमारी ही है, इसलिए हम तो अंधेरी गलीमें ही टकराये । चोरोंका उपद्रव[१] बढ़ता ही जाता है, क्योंकि उन्होंने तो चोरीको अपना पेशा मान लिया है । हम देखते हैं कि इससे बेहतर तो यह है कि चोरोंका उपद्रव बरदाश्त किया जाय; ऐसा करनेसे चोरोंको समझ आयेगी । इतना सहन करने पर हम देखते हैं कि चोर कोई हमसे अलग नहीं हैं । हमारे लिए तो सब सगे हैं, मित्र–दोस्त हैं । उनको सज़ा नहीं दी जा सकती । लेकिन उपद्रव सहते जाना ही काफ़ी नहीं है । उसमें से तो कायरता[२] पैदा होती है । इसलिए हम और एक विशेष[३] धर्म[४] महसूस करते हैं । चोर अगर हमारे भाईबन्द हों, तो वह भावना उनमें भी पैदा करनी चाहिये । इसलिए उन्हें अपनानेके तरीक़े ढूंढ़नेकी ज़रूरी तकलीफ़ हमें उठाना चाहिये । यह है

१. सताना । २. बुज़दिली । ३. ख़ास । ४. फ़र्ज़ ।

अहिंसाकी राह । इसमें ज़्यादा और ज़्यादा दुःख न्योतनेकी ही बात आती है, अटूट धीरज सीखनेकी बात आती है । और अगर वह (धीरज) हममें रहा, तो आख़िर चोर साहूकार बनता है, हमें सत्यका ज़्यादा साफ़ दर्शन होता है । इस तरह हम दुनियाको दोस्त बनाना सीखते हैं; हम ईश्वरकी, सत्यकी महिमा[1]को ज़्यादा महसूस करते हैं; कठिनाइयां झेलने पर भी हमारी शांति, हमारा सुख बढ़ता है; हममें साहस, दिलेरी और हिम्मत बढ़ती है; हम शाश्वत–लाफ़ानी और अशाश्वत–फ़ानीका भेद ज़्यादा समझने लगते हैं; करनें लायक़ और न करनें लायक़को पहचानना हमें आता है । हमारा अभिमान[2] गल जाता है, नम्रता बढ़ती है; परिग्रह[3] अपनें-आप घट जाता है; और तनमें भरा हुआ मैल सदा घटता जाता है ।

यह अहिंसा आज हम जिसे मोटे तौर पर समझते हैं, सिर्फ़ वही नहीं है । किसीको कभी नहीं मारना, यह तो अहिंसा है ही । तमाम ख़राब विचार हिंसा है । जल्दबाज़ी हिंसा है । झूठ बोलना हिंसा है । द्वेष–बैर–डाह हिंसा है । किसीका बुरा चाहना हिंसा है । जिसकी जगतको ज़रूरत है उस पर क़ब्जा रखना भी हिंसा है । लेकिन जो कुछ हम खाते हैं वह जगतके लिए ज़रूरी है । जहां हम खड़े हैं वहां सैकड़ों सूक्ष्म[4] जीव पड़े हैं और दुःखी होते हैं; वह जगह उनकी है । तो क्या हम आत्महत्या[5] करें?

---

१. बड़ाई । २. खुदी । ३. जमा रखनेकी आदत । ४. बारीक । ५. खुदकुशी ।

तो भी छुटकारा नहीं होता। अगर विचारमें हम शरीरके तमाम लगाव छोड़ दें, तो आख़िरमें शरीर हमें छोड़ेगा। यह अमूर्छित[१] स्वरूप ही सत्यनारायण है। यह दर्शन अधीरता[२] से कभी हो ही नहीं सकता। तन अपना नहीं है, वह तो (दूसरेको देनेके लिए मिली हुई) परायी चीज़ है, ऐसा समझकर उसका जो उपयोग हो वह करके हम अपनी राह तय करें।

मुझे लिखना तो था आसान ढंगसे, लेकिन लिख गया मुश्किल ढंगसे। फिर भी जिसने अहिंसाके बारेमें ज़रा भी सोचा होगा, उसे यह समझनेमें दिक़्क़त नहीं होनी चाहिये।

इतना सब जान लें: बग़ैर अहिंसाके सत्यकी खोज नामुमकिन है। अहिंसा और सत्य ऐसे ओतप्रोत — तानें-बानेकी तरह एक-दूसरेमें मिले हुए — हैं, जैसे सिक्केके दो रुख़ या चिकनी चकतीके दो पहलू। उसमें उलटा कौनसा और सीधा कौनसा? फिर भी अहिंसाको हम साधन यानी जरिया मानें और सत्यको साध्य यानी मक़सद। साधन हमारे बसकी बात है, इसलिए अहिंसा परम धर्म हुई और सत्य परमेश्वर हुआ। साधनकी फिक्र हम करते रहेंगे, तो साध्यके दर्शन हम किसी न किसी दिन ज़रूर करेंगे। इतना निश्चय किया कि हम जग जीते। हमारे मार्गमें चाहे जो संकट आयें, ऊपरी निगाहसे देखने पर हमारी चाहे जितनी हार होती दिखाई दे, तो भी हम विश्वास[३] को

१. नाग़ाफ़िल। २. बेसब्री। ३. यक़ीन।

न छोड़ते हुए एक ही मंत्रका जप करें — सत्य है । वही है । वही एक परमेश्वर है । उसका साक्षात्कार–दीदार करनेका एक ही मार्ग, एक ही साधन अहिंसा है; उसे मैं कभी नहीं छोड़ूंगा । जिस सत्यरूप परमेश्वरके नामसे यह प्रतिज्ञा की है, वह इसे निभानेका बल दे ।

३

ब्रह्मचर्य

ता. ५–८–'३०, य. मं.

मंगल-प्रभात

हमारे व्रतोंमें तीसरा व्रत ब्रह्मचर्यका है । हक़ीक़तमें दूसरे सब व्रत एक सत्यके व्रतसे ही निकलते हैं और उसीके वास्ते हैं । जिस मनुष्यनें सत्यको पसंद किया है, जो उसीकी उपासना (भक्ति) करता है, वह अगर उसे छोड़कर किसी और चीज़की आराधना करता है, तो व्यभिचारी[१] साबित होता है । तब फिर विकारकी आराधना तो हो ही कैसे सकती है? जिसकी सारी प्रवृत्ति, सारा काम सत्यके दर्शनके लिए है, वह बच्चे पैदा करनेके या घर-संसार, कुटुंब-कबीला चलानेके काममें कैसे पड़ सकता है? भोग-विलाससे किसीनें सत्यको पाया हो ऐसी आज तक एक भी मिसाल हमारे सामने नहीं है ।

---

१. बेवफ़ा ।

या हम अहिंसाके पालनको[१] लें, तो उसका पूरा-पूरा अमल करना ब्रह्मचर्यके बिना नामुमकिन है। अहिंसा यानी सब जगह फैला हुआ, सर्वव्यापी प्रेम । जहां पुरुषने एक स्त्रीको या स्त्रीने एक पुरुषको अपना प्रेम दे दिया, वहां उसके पास दूसरेके लिए रहा क्या? उसका मतलब यही हुआ कि 'हम दो पहले, दूसरे सब बादमें'। पतिव्रता स्त्री पुरुष[२] के लिए और पत्नीव्रती पुरुष स्त्री[३] के लिए सब-कुछ कुरबान करनेको तैयार होगा, इसलिए यह तो साफ़ है कि उसके द्वारा सर्वव्यापी प्रेमका पालन कभी नहीं हो सकेगा। वह सारी दुनियाको अपना कुटुंब नहीं ही बना सकेगा, क्योंकि उसका 'अपना' माना हुआ एक कुटुम्ब मौजूद है या बन रहा है। वह कुटुम्ब जितना बढ़ता है उतना सर्वव्यापी प्रेम, विश्वप्रेममें खलल पहुंचता है। सारी दुनियामें ऐसा होता हुआ हम देख रहे हैं। इसलिए अहिंसा-व्रतका पालन करनेवाला ब्याह नहीं कर सकता; तब फिर ब्याहसे बाहरके विकारोंका तो पूछना ही क्या?

तब जो लोग ब्याह कर बैठे हैं उनका क्या? क्या वे कभी सत्यको नही पायेंगे? क्या वे कभी भी सर्वार्पण — सब-कुछ न्योछावर — नहीं कर सकेंगे? हमने उसका रास्ता निकाला ही है। शादीशुदा–विवाहित लोग अविवाहित जैसे बन जायें। इस दिशामें इससे बढ़कर और कुछ मेरे अनुभव[४] में नहीं आया है। इस हालतका रस[५] जिसने चखा है वह गवाही

---

१. बरतनेको। २. शौहर। ३. बीबी। ४. तजरबा। ५. मज़ा।

दे सकेगा। आज तो इस प्रयोग[1] की सफलता[2] साबित हो चुकी है ऐसा कह सकते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष एक-दूसरेको भाई-बहन समझने लगें, तो सारे जंजालसे छूट जाते हैं। दुनियाकी तमाम औरतें बहनें हैं, माताएं हैं, बेटियां हैं, यह ख़याल ही आदमीको एकदम ऊंचा ले जानेवाला है, बन्धन[3]से मुक्ति[4] देनेवाला हो जाता है। इसमें पति-पत्नी[5] कुछ भी खोते नहीं हैं, बल्कि अपनी पूंजी बढ़ाते हैं, कुटुम्ब बढ़ाते हैं और विकार-रूपी मैलको निकाल डालनेसे प्रेम भी बढ़ाते हैं। विकारके न रहनेसे एक-दूसरेकी सेवा बेहतर हो सकती है, आपसके झगड़ेके मौक़े कम होते हैं। जहां स्वार्थी,[6] एकांगी[7] प्रेम होता है, वहां झगड़ेको ज़्यादा स्थान रहता है।

ऊपरकी प्रधान[8] बात सोच लेनेके बाद और उसके दिलमें जम जानेके बाद ब्रह्मचर्यसे होनेवाले शरीरके लाभ, वीर्य[9]-लाभ वग़ैरा बहुत गौण हो जाते हैं। इरादतन् भोग-विलासके लिए वीर्यको गंवाना और शरीरको निचोना यह कितनी बेवक़ूफी है? वीर्यका उपयोग[10] दोनोंकी शरीर और मनकी शक्ति बढ़ानेके लिए है। विषय-भोगमें[11] उसका इस्तेमाल करना उसका बहुत बड़ा दुरुपयोग[12] है, और इसलिए वह बहुतसी बीमारियोंका मूल हो जाता है।

---

१. आज़माइश। २. कामयाबी। ३. क़ैद। ४. आज़ादी। ५. शौहर-बीबी। ६. मतलबी। ७ इकतरफ़ा। ८. अव्वल। ९. धातु। १०. इस्तेमाल। ११. ऐश व इशरतमें। १२. बुरा इस्तेमाल।

ऐसा ब्रह्मचर्य मन, वचन और तनसे बरतनेंका होता है। तमाम व्रतोंका ऐसा ही समझना चाहिये। जो शरीरको क़ाबूमें रखता है, लेकिन मनसे विकारको पोसता रहता है, वह मूढ़[1] और मिथ्याचारी[2] है, ऐसा गीतामें हमने पढ़ा है; सभीनें उसका अनुभव किया है। मनको विकारवाला रहनें देना और शरीरको दबानेंकी कोशिश करना इसमें नुक़सान ही है। जहां मन है वहां शरीर आख़िर घसिटे बिना रहेगा ही नहीं। यहां एक भेद[3] समझ लेना ज़रूरी है। मनको विकारवश होनें देना एक बात है; मन अपने-आप, बग़ैर इच्छाके, जबरन् विकारवाला हो जाय या हुआ करे यह दूसरी बात है। उस विकारमें हम मददगार न हों, तो आख़िर हमारी जीत है ही। यह हम क्षण-क्षण अनुभव करते हैं कि शरीर क़ाबूमें रहता है, लेकिन मन नहीं रहता। इसलिए शरीरको तुरन्त बसमें करके हम मनको बसमें करनेंकी हमेशा कोशिश करते रहें, तो हम (अपना) फ़र्ज़ अदा कर चुके। मनके बसमें हम हुए कि शरीर और मनका झगड़ा शुरू हुआ, मिथ्याचारका आरंभ हुआ। जब तक मनके विकारको हम दबाते रहेंगे, तब तक दोनों साथ साथ जायेंगे ऐसा कह सकते हैं।

इस ब्रह्मचर्यका पालन बहुत मुश्किल, लगभग नामुमकिन माना गया है। उसके कारण ढूंढ़ने पर पता चलता है कि ब्रह्मचर्यका तंग, संकुचित अर्थ किया गया

---

१. मूरख। २. ढोंगी। ३. फ़र्क़।

है। जनन-इन्द्रिय (लिंग, योनि) के विकारों पर क़ाबू ही ब्रह्मचर्यका पालन है एसा माना गया है। मुझे लगता है कि यह अधूरी और ग़लत व्याख्या[१] है। तमाम विषयों[२] पर रोक, क़ाबू ही ब्रह्मचर्य है। जो दूसरी इन्द्रियोंको–हवासोंको–जहां तहां भटकनें देता है और एक ही इन्द्रियको रोकनेकी कोशिश करता है, वह निकम्मी कोशिश करता है, इसमें क्या शक है? कानोंसे विकारकी बातें सुनें, आंखोंसे विकार पैदा करनेंवाली चीज़ें देखे, जीभसे विकारोंको तेज़ करनेंवाली चीज़ें स्वादसे[३] खाय, हाथसे विकारोंको तेज़ करनेंवाली वस्तुओंको छुए और फिर भी जनन-इन्द्रियको रोकनेका इरादा कोई रखे, तो यह आगमें हाथ डाल कर न जलनेंकी कोशिश करनें जैसा होगा। इसलिए जो जनन-इन्द्रियको रोकनेंकी ठान ले, उसको तमाम इन्द्रियोंको विकारोंसे रोकनेकी ठान ही लेना चाहिये। ब्रह्मचर्यकी तंग व्याख्यासे नुक़सान हुआ है, ऐसा मुझे हमेशा लगा है। मेरी तो पक्की राय है और मेरा तजरबा भी है कि अगर हम सब इन्द्रियोंको एक साथ बसमें लानेंकी आदत डालें, तो जनन-इन्द्रियको बसमें लानेकी कोशिश तुरन्त सफल[४] होगी। इसमें मुख्य चीज़ स्वाद[५]की इन्द्रिय है, और इसीलिए उसके संयमको हमने अलग स्थान दिया है। उसके बारेमें हम इसके बाद सोचेंगे।

---

१. तशरीह। २. जज़्बात। ३. चावसे। ४. कारगर। ५. लज़्ज़त, ज़ायक़ा।

ब्रह्मचर्यका मूल अर्थ सब याद करें। ब्रह्मचर्य यानी ब्रह्मकी — सत्यकी — खोजमें चर्या यानी उसके मुताल्लिक आचार–बरताव। इस मूल अर्थमें से सब इन्द्रियोंका संयम[1] यह विशेष[2] अर्थ निकलता है। सिर्फ़ जनन-इन्द्रियका संयम ऐसा अधूरा अर्थ तो हम भूल ही जायं।

४

अस्वाद

ता. १२–८–'३०
मंगल-प्रभात

ब्रह्मचर्यके साथ बहुत नज़दीकका सम्बन्ध रखनेवाला यह व्रत है। मेरा अनुभव है कि अगर मनुष्य इस व्रतमें पार उतर सके, तो ब्रह्मचर्य यानी जनन-इन्द्रियका संयम बिलकुल सहल हो जाय। लेकिन साधारण तौर पर इसे व्रतोंमें अलग स्थान नहीं दिया जाता। स्वादको बड़े बड़े मुनिवर भी जीत नहीं सके, इसलिए उस व्रतको अलग स्थान नहीं मिला। यह तो सिर्फ़ मेरा अनुमान है। ऐसा हो या न हो, हमनें इस व्रतको अलग स्थान दिया है, इसलिए इसका विचार अलगसे कर लेना ठीक होगा।

अस्वाद यानी स्वाद न लेना। स्वाद यानी रस–मज़ा। जैसे दवा खाते वक़्त वह ज़ायक़ेदार है या नहीं

---

१. क़ाबू। २. ख़ास।

इसका खयाल न करते हुए शरीरको उसकी ज़रूरत है ऐसा समझकर उसकी मात्रामें[१] ही हम खाते हैं, उसी तरह अन्न[२]का समझना चाहिये। अन्न यानी खाने लायक़ तमाम चीज़ें। इसलिए दूध और फल भी इसमें आ जाते हैं। जैसे दवा कम मात्रामें ली हो तो असर नहीं करती या कम असर करती है और ज़्यादा ली हो तो नुक़सान करती है, उसी तरह अन्नका भी है। इसलिए कोई भी चीज़ सिर्फ़ स्वादके लिए चखना व्रतका भंग है। ज़ायक़ेदार लगनेवाली चीज़ ज़्यादा खाना यह तो आसानीसे व्रतको तोड़ना हुआ। इस परसे हम समझ सकते हैं कि किसी चीज़का स्वाद बढ़ानें या बदलनेके लिए या अस्वाद[३] मिटानेके लिए नमक मिलाना भी व्रत-भंग है। लेकिन खुराकमें अमुक प्रमाण[४]में नमककी ज़रूरत है ऐसा हम जानते हैं और इसलिए उसमें नमक डालें तो ऐसा करनेमें व्रतका भंग नहीं है। शरीरके पोषण[५]के लिए ज़रूरत न हो, फिर भी मनको ठगनेके लिए 'ज़रूरत है' ऐसा कहकर कोई चीज़ और जोड़ना यह तो मिथ्याचार—झूठा बरताव हुआ।

इस तरह सोचनें पर हम देखेंगे कि जो अनेक चीज़ें हम लेते हैं, वे शरीरकी परवरिशके लिए ज़रूरी न होनेके कारण छोड़नें लायक़ होती हैं। और यों अनगिनत वस्तुओंका त्याग जिसके लिए कुदरती हो जाय, उसके

---

१. मिक़दारमें। २. खुराक। ३. बेलज़्ज़ती। ४. मिक़दार। ५. परवरिश।

तमाम विकार शान्त हो जाते हैं। 'एक हंडिया तेरह चीज़ें मांगती है' (एक तोलडी तेर वानां मागे छे), 'पेट बेगार करवाता है' (पेट करावे वेठ), 'पेट नाच नचाता है' (पेट वाजां वगडावे) — इन वचनोंमें बहुत सार है। इस बारेमें इतना कम ख़याल किया गया है कि अस्वाद-व्रतकी निगाहसे खुराककी पसंदगी लगभग नामुमकिन हो गई है। और बचपनसे ही मां-बाप ग़लत दुलार करके अनेक तरहके स्वाद बच्चोंको कराकर उनके शरीरको बिगाड़ डालते हैं और जीभको कुतिया बना डालते हैं, जिससे बड़े होनें पर लोग शरीरसे रोगी और स्वादकी दृष्टिसे बड़े विकारी देखनेमें आते हैं। इसके कड़वे नतीजे हम पग-पग पर महसूस करते हैं। हम बहुत ख़र्चमें पड़ जाते हैं, बैद-डाक्टरोंके दरवाज़े पर जाते रहते हैं और शरीर तथा इन्द्रियोंको बसमें रखनेके बजाय उनके ग़ुलाम होकर पंगु–अपाहिज जैसे हो जाते हैं। एक तज़रबेकार बैदका बचन है कि जगतमें उसनें एक भी निरोगी–तंदुरुस्त आदमी नहीं देखा। जरा भी स्वाद किया कि शरीर भ्रष्ट हुआ, बिगड़ा और तुरन्त उस शरीरके लिए उपवास[१]की ज़रूरत पैदा हुई।

इस विचारधारासे किसीको घबरानेंकी ज़रूरत नहीं है। अस्वाद-व्रतसे डरकर उसे छोड़नेंकी भी ज़रूरत नहीं है। जब हम कोई व्रत लेते हैं तो उसका मतलब यह नहीं कि तभीसे हम उसे पूरा-पूरा निभानें लग गये। व्रत लेना यानी उसको पूरा-पूरा निभानेंकी ईमानदारीसे

१. फ़ाक़ा।

मन, वचन और कर्मसे मरने तक पक्की कोशिश करना। कोई व्रत मुश्किल है इसलिए उसकी व्याख्या[१] को ढीला करके हम मनको धोखा न दें। अपने सुभीतेके लिए आदर्श[२] को नीचे लानेमें असत्य–झूठ (भरा) है, हमारी गिरावट है। मक़सदको स्वतंत्र रूपसे[३] समझकर, वह कितना ही मुश्किल क्यों न हो, वहां तक पहुंचनेकी जी-जानसे कोशिश करना परम अर्थ है—पुरुषार्थ[४] है। [पुरुष शब्दका अर्थ सिर्फ़ नर न करके मूल अर्थ करना चाहिये। पुरमें यानी शरीरमें रहता है वह पुरुष। ऐसा अर्थ करनेसे पुरुषार्थ शब्दका उपयोग नर-नारी दोनोंके लिए हो सकता है।] महाव्रतोंका तीनों कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य) में पूरा-पूरा पालन करनेके लिए जो समर्थ[५] है, उसे जगतमें कुछ भी करनेको बाक़ी नहीं रहता; वह भगवान है, वह मुक्त है–आज़ाद है। हम तो अल्प,[६] मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले (मुमुक्षु), जाननेकी इच्छा रखनेवाले (जिज्ञासु), सत्यका आग्रह रखनेवाले—सच्चाई पर ज़ोर देनेवाले—और उसकी खोज करनेवाले जीव हैं। इसलिए गीताकी भाषामें हम धीरे-धीरे लेकिन अतन्द्रित[७] रह कर कोशिश करते रहें। ऐसा करेंगे तो किसी दिन प्रभुकी कृपा, उसके प्रसादके लायक़ हो जायेंगे और तब हमारे तमाम रस, भोगकी लालसायें जल जायेंगी।

---

१. तशरीह। २. मक़सद। ३. अलगसे। ४. मर्दानी कोशिश। ५. ताक़तवर। ६. नाचीज़। ७. नाग़ाफ़िल।

अस्वाद-व्रतकी अहमियत अगर हम समझे हों, तो उसके पालनके लिए हम नयी कोशिश करें। उसके लिए चौबीसों घंटे खानेके ही विचार करते रहनेकी ज़रूरत नहीं है। सिर्फ़ ख़बरदारी, जागृतिकी बहुत ज़रूरत रहती है। ऐसा करनेसे थोड़े ही समयमें यह मालूम हो जायगा कि हम कहां स्वाद करते हैं और कहां शरीरकी परवरिशके लिए खाते हैं। यह जब मालूम हो जाय तब दृढ़तासे – मज़बूतीसे हम स्वाद कम करते ही जायं। इस नज़रसे सोचनें पर आश्रममें सबके लिए बनी हुई रसोई, जो अस्वादकी भावनासे बनी हुई होती है, बहुत मददगार होती है। वहां क्या खायेंगे या क्या पकायेंगे, इसका हमें विचार नहीं करना पड़ता; लेकिन जो खाना पका हुआ हो और हमारे लिए तजनें लायक़ न हो, उसे ईश्वरकी कृपा समझकर, मनमें भी उसकी टीका-टिप्पणी[१] न करते हुए, संतोषके साथ शरीरके लिए जितना ज़रूरी हो उतना खाकर उठ जायें। ऐसा करनेवाला आसानीसे अस्वाद-व्रतका पालन करता है। सबकी रसोई बनानेवाले हमारा बोझ हलका करते हैं। वे हमारे व्रतके रखवाले बनते हैं। वे स्वाद करानेकी दृष्टिसे कुछ भी नहीं बनायेंगे, सिर्फ़ समाजके शरीरके पोषणके लिए ही खाना पकायेंगे। सचमुच तो आदर्श दशामें आगकी ज़रूरत कमसे कम या बिलकुल ही नहीं है। सूरजके रूपमें महाअग्नि जो चीज़ें पकाती है, उन्हींमें से हमारे खानें लायक़ चीजें हमें खोज निकालना

१. नुक़्ताचीनी।

चाहिये । और इस तरह सोचनें पर मनुष्य-प्राणी[१] सिर्फ़ फल खानेवाला है ऐसा साबित होता है । लेकिन यहां इतनी गहराईमें जानेकी ज़रूरत नहीं है । यहां तो अस्वाद-व्रत क्या है, उसमें कौन कौनसी मुसीबतें हैं और नहीं हैं और उसका ब्रह्मचर्यके पालनसे कितना नज़दीकका सम्बन्ध है यही सोचना था ।

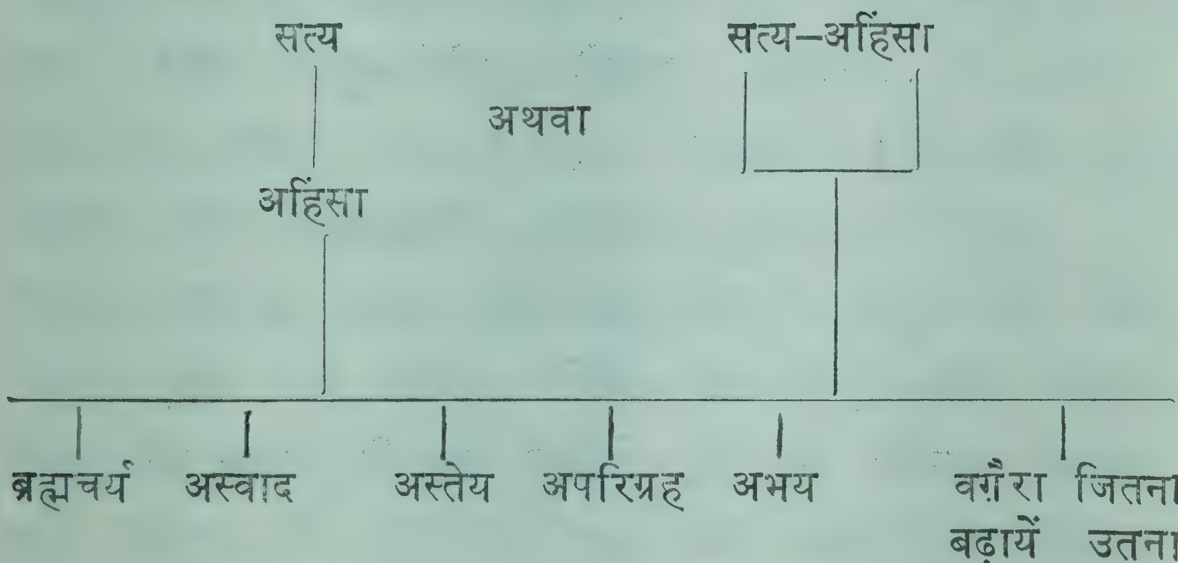
इतना जंच जानेके बाद सब लोग अपनी शक्तिके मुताबिक़ इस व्रतमें पार उतरनेकी शुभ कोशिश करें ।

५

अस्तेय (चोरी न करना)

ता. १९–८–'३०, य. मं.
मंगल-प्रभात

अब हम अस्तेय-व्रत पर आते हैं । गहराईमें जानेसे हम देखेंगे कि सब व्रत सत्य और अहिंसाके या सत्यके पेटमें समाये हुए हैं । वे इस तरह दिखाये जा सकते हैं :



१. इन्सान ।

या तो सत्यमें से अहिंसा निकलती है ऐसा मानें या सत्य-अहिंसाकी जोड़ी मानें। दोनों एक ही चीज़ हैं; फिर भी मेरा मन पहलेकी ओर झुकता है। और आख़िरी हालत तो जोड़ीसे — द्वन्द्वसे — परे है। परम सत्य अकेला टिकता है। सत्य साध्य[१] है, अहिंसा साधन[२] है। अहिंसा क्या है यह हम जानते हैं; उसका पालन मुश्किल है। सत्यका तो हम सिर्फ़ कुछ अंश[३] ही जानते हैं; उसे पूरी तरह जानना देहधारीके लिए कठिन है, जैसे कि अहिंसाका पूरा-पूरा पालन देहधारीके लिए कठिन है।

अस्तेयके मानी हैं चोरी न करना। कोई ऐसा नहीं कहेगा कि जो चोरी करता है, वह सत्यको जानता है या प्रेमधर्मका पालन करता है। फिर भी चोरीका थोड़ा-बहुत कसूर हम सब जानें-अनजानें करते ही हैं। बग़ैर इजाज़तके किसीका कुछ लेना यह तो चोरी है ही। लेकिन जिसे अपना माना है उसकी भी चोरी इन्सान करता है — जैसे कोई बाप, अपने बच्चोंके न जानते हुए, उनको न जतानेके इरादेसे, चोरी-चुपके कोई चीज़ खा लेता है। आश्रमका भंडार[४] हम सबका है ऐसा कह सकते हं, परन्तु उसमें से चोरी-चुपके कोई गुड़की डली भी ले ले तो वह चोर है। एक बालक दूसरेकी कलम लेता है तो वह चोरी करता है। चाहे दूसरा आदमी जानता भी हो, लेकिन उसकी इजाज़तके बग़ैर उसकी कोई चीज़ लेना यह भी चोरी है। फलां चीज़

१. मक़सद। २. ज़रिया। ३. हिस्सा। ४. रसदख़ाना।

किसीकी भी नहीं है, ऐसा मानकर उसे लेना भी चोरी है; यानी रास्तेमें पड़ी मिली वस्तुके हम मालिक नहीं हैं, उस प्रदेश[१]का राजा या तंत्र[२] उसका मालिक है। आश्रमके नज़दीक मिली हुई कोई भी चीज़ आश्रमके मंत्रीके सुपुर्द करनी चाहिये। अगर वह चीज़ आश्रमकी न हो, तो मंत्री उसे पुलिसके हवाले कर दे।

यहां तक तो समझना प्रमाणमें[३] सहल ही है। लेकिन अस्तेय इससे बहुत आगे जाता है। किसी एक चीज़की हमें ज़रूरत नहीं है, फिर भी वह जिसके कब्जेमें हो उससे, चाहे उसकी इजाज़त लेकर ही, लेना चोरी है। जिसकी ज़रूरत न हो ऐसी एक भी चीज़ हमें नहीं लेनी चाहिये। ऐसी चोरी जगतमें ज़्यादातर खानेकी चीज़ोंके बारेमें होती है। मुझे अमुक[४] फलकी हाजत नहीं है, फिर भी मैं उसे खाता हूं, या चाहिये उससे ज़्यादा खाता हूं, तो वह चोरी है। सचमुच अपनी हाजत कितनी है यह मनुष्य हमेशा जानता नहीं है, और लगभग हम सब होनी चाहिये उससे ज़्यादा अपनी हाजतें बना रखते हैं। इससे हम अनजाने चोर बन जाते हैं। विचार करनेसे हम देखेंगे कि अपनी बहुतसी हाजतें हम कम कर सकते हैं। अस्तेयका व्रत पालनेवाला एकके बाद एक अपनी हाजतें कम करता जायेगा। इस जगतमें बहुतसी कंगाली अस्तेयके भंगसे पैदा हुई है।

---

१. इलाक़ा। २. हुकूमत। ३. मुक़ाबलेमें। ४. फलां।

ऊपर जो बताई गईं वे सब बाहरी या शरीरकी चोरियां हुईं । । इससे भी बारीक–सूक्ष्म और आत्माको नीचे गिरानेवाली या रखनेवाली चोरी मानसिक, मनसे की जानेवाली है । मनसे हम किसीकी चीज़ पानेकी इच्छा करें या उस पर बुरी नज़र डालें यह चोरी है । बड़े हों या बच्चे हों, अच्छी चीज़ देखकर अगर ललचायें तो वह मनकी चोरी है । उपवास[१] करनेवाला शरीरसे तो नहीं खाये, लेकिन दूसरेको खाते देखकर मनसे स्वादका मज़ा ले, तो वह चोरी करता है और अपनें उपवासका भंग करता है । उपवास रखनेवाला जो आदमी उपवास छोड़ते समय खानेके विचार किया करता है, वह अस्तेय और उपवासका भंग करता है ऐसा कहा जा सकता है । अस्तेय-व्रत पालनेवालेको भविष्यमें पानेकी चीज़के विचारोंके भंवरमें नहीं पड़ना चाहिये । बहुतसी चोरियोंके मूलमें ऐसी बद-दियानत पाई जायेगी । आज जो चीज़ सिर्फ़ खयालमें ही है, उसे पानेके लिए कल हम भले-बुरे उपाय[२] काममें लाना शुरू कर देंगे ।

और जैसे वस्तुकी चोरी होती है, वैसे विचारकी चोरी भी होती है । अमुक अच्छा विचार अपनें मनमें न उठा हो, फिर भी खुदनें ही सबसे पहले वह विचार किया ऐसा जो अहंकार[३] से कहता है, वह विचारकी चोरी करता है । ऐसी चोरी बहुतसे विद्वानोंनें[४] भी दुनियाकी तवारीखमें की है और आज भी चल रही है । ख़याल

१. रोज़ा । २. तरीक़े । ३. ख़ुदी । ४. आलिमोंने ।

कीजिये कि मैंने आंध्रमें एक नयी किस्मका चरखा देखा। वैसा चरखा मैं आश्रममें बनाऊं और फिर कहूं कि यह मेरी खोज है, तो इसमें मैं साफ़ तौर पर दूसरेकी खोजकी चोरी करता हूं, झूठ तो बोलता ही हूं।

इसलिए अस्तेय-व्रतका पालन करनेंवालेको बहुत नम्र, बहुत विचारशील[1], बहुत ख़बरदार और बहुत सादा रहना पड़ता है।

६

अपरिग्रह (जमा न रखना)

ता. २६–८–'३०, य. मं.
मंगल-प्रभात

अपरिग्रहका सम्बन्ध अस्तेयसे है। जो माल असलमें चुराया नहीं है उसे ज़रूरत न होने पर भी जमा करनेसे वह चोरीका माल-सा बन जाता है। परिग्रहके मानी हैं संचय यानी इकट्ठा करना। सत्यकी खोज करनेंवाला, अहिंसा बरतनेवाला परिग्रह नहीं कर सकता। परमात्मा परिग्रह नहीं करता। अपनें लिए ज़रूरी चीज़ वह रोज़की रोज़ पैदा करता है। इसलिए अगर हम उस पर भरोसा रखते हैं, तो हमें समझना चाहिये कि हमारी ज़रूरतकी चीज़ें वह रोज़ाना देता है, देगा। औलियाओंका, भक्तोंका यही अनुभव है। रोज़की ज़रूरत जितना ही रोज़ पैदा करनेका

१. सोच-विचार करनेवाला।

ईश्वरका नियम हम नहीं जानते, या जानते हुए भी पालते नहीं। इसलिए जगतमें असमानता और उसमें से पैदा होनेवाले दुःख हम भुगतते हैं। अमीरके यहां उसको न चाहिये वैसी चीज़ें भरी पड़ी होती हैं, लापरवाहीसे खो जाती हैं, बिगड़ जाती हैं; जब कि इन्हीं चीज़ोंकी कमीके कारण करोड़ों लोग भटकते हैं, भूखों मरते हैं, ठंडसे ठिठुर जाते हैं। सब लोग अगर अपनी ज़रूरतकी चीज़ोंका ही संग्रह करें, तो किसीको तंगी महसूस न हो और सबको संतोष हो। आज तो दोनों तंगी महसूस करते हैं। करोड़पति भी अरबपति होना चाहता है, फिर भी उसको संतोष नहीं होता। कंगाल करोड़पति होना चाहता है; कंगालको भरपेट ही मिलनेसे संतोष होता हो ऐसा नहीं देखा जाता। फिर भी उसे भरपेट पानेका हक है और उतना पानेवाला उसे बनाना समाजका फ़र्ज़ है। इसलिए उस (ग़रीब) के और अपने संतोषके ख़ातिर अमीरको पहल करनी चाहिये। अगर वह अपना बहुत ज़्यादा परिग्रह छोड़े, तो कंगालको अपनी ज़रूरतका आसानीसे मिल जाय और दोनों पक्ष[1] संतोषका सबक़ सीखें। आत्यंतिक[2] आदर्श अपरिग्रह तो जो मनुष्य मन और कर्मसे दिगंबर है उसीका हो सकता है। मतलब कि वह पंछीकी तरह बग़ैर घरके, बग़ैर कपड़ेके और बग़ैर अन्नके चलता-फिरता रहेगा। अन्न तो जो उसे रोज़ लगेगा वह भगवान देता रहेगा। इस अवधूत[3] दशाको बिरला ही आदमी

१. गिरोह। २. हद दरजेका। ३. मस्ताना, फ़क़ीराना।

पहुंच सकेगा। हम मामूली दरजेके सत्याग्रही, जिज्ञासु (जाननेंकी इच्छा रखनेंवाले) लोग आदर्श[१]को ख़यालमें रखकर जैसा बन पड़े, हमेशा अपने परिग्रहकी जांच करते रहें और उसे कम करते जायें। सही सुधार, सच्ची सभ्यता[२]का लक्षण[३] परिग्रह बढ़ाना नहीं है, बल्कि सोच-समझ कर और अपनी इच्छासे उसे कम करना है। ज्यों ज्यों हम परिग्रह घटाते जाते हैं, त्यों त्यों सच्चा सुख और सच्चा संतोष बढ़ता जाता है, सेवाकी शक्ति बढ़ती जाती है। इस तरह सोचने पर और बरतनें पर हम देखेंगे कि आश्रममें हम बहुत-सा संग्रह ऐसा करते हैं, जिसकी ज़रूरत साबित नहीं कर सकेंगे; और ऐसे बिन-ज़रूरी परिग्रहसे पड़ोसीको चोरी करनेके लालचमें फंसाते हैं। अभ्याससे, आदत डालनेसे आदमी अपनी हाजतें घटा सकता है; और ज्यों ज्यों उन्हें घटाता जाता है त्यों त्यों वह सुखी, शान्त और सब तरहसे तंदुरुस्त होता जाता है। महज सत्यकी यानी आत्माकी नज़रसे सोचनें पर शरीर भी परिग्रह है। भोगकी इच्छासे हमनें शरीरका आवरण[४] पैदा किया है और उसे हम टिकाये रखते हैं। अगर भोगकी इच्छा बिलकुल कम हो जाय, तो शरीरकी हाजत मिट जाय; यानी मनुष्यको नया शरीर लेनेंकी ज़रूरत न रहे। आत्मा सब जगह फैलनेंवाली, सर्वव्यापी होनेसे शरीर-रूपी पिंजरेमें क्योंकर कैद होगी? उस पिंजरेको बनाये रखनेके लिए हम बुरा काम क्यों करें? औरोंको क्यों मारें? इस तरह विचार करते हुए हम आख़िरी त्याग तक पहुंच

---

१. मक़सद। २. तहजीब। ३. सिफ़त। ४. ढक्कन।

जाते हैं और जब तक शरीर है तब तक उसका उपयोग सिर्फ़ सेवाके लिए करना सीखते हं; यहां तक कि सेवा ही उसकी असली ख़ुराक हो जाती है। वह खाता है, पाता है, लेटता है, बैठता है, जागता है, सोता है; यह सब सेवाके लिए ही होता है। इसमें से पैदा होनेवाला सुख सच्चा सुख है, और ऐसा करते हुए मनुष्य अन्तमें सत्यकी झांकी करता है। हम सब अपने अपने परिग्रहके बारेमें इसी निगाहसे सोचें।

इतना याद रखने लायक़ है कि जैसे चीज़ोंका अपरिग्रह होना चाहिये वैसे ही विचारोंका भी अपरिग्रह होना चाहिये। जो आदमी अपने दिमाग़में बेकारका ज्ञान भर रखता है वह परिग्रही है। जो विचार हमें ईश्वरसे विमुख करते हैं, फेर लेते हैं या ईश्वरकी ओर नहीं ले जाते, वे सब परिग्रहमें गिने जायेंगे और इसलिए छोड़ने लायक़ हैं। ज्ञानकी ऐसी व्याख्या भगवानने गीताके तेरहवें अध्यायमें दी है। वह इस मौक़े पर सोचने लायक़ है। अमानित्व[१] वग़ैराको गिना कर भगवानने कह दिया है कि उसके अलावा जो कुछ है वह सब अज्ञान है। अगर यह सच्चा वचन है—और सच्चा तो है ही—तो आज हम बहुत कुछ जो ज्ञानके नामसे जमा करते हैं वह अज्ञान ही है और उससे लाभके बजाय नुक़सान होता है; उससे सिर घूमता है और आख़िर वह खाली हो जाता है; उससे असंतोष फैलता है और बुराइयां बढ़ती हैं।

१. घमंड न होना।

इसमें से कोई जड़ताका अर्थ कभी न निकाले। हमारा हरएक पल और क्षण प्रवृत्तिवाला[1] होना चाहिये। लेकिन वह प्रवृत्ति सात्त्विक हो, सत्यकी ओर ले जानेवाली हो। जिसने सेवाधर्मको अपनाया है, वह एक पलके लिए भी जड़ दशामें नहीं रह सकता। यहां तो सार-असार[2] का विवेक[3] सीखनेकी बात है। सेवापरायण[4] मनुष्यको यह विवेक आसानीसे हासिल होता है।

७

अभय

ता. २–९–'३०
मंगल-प्रभात

इसकी गिनती गीताजीके सोलहवें अध्यायमें दैवी संपत्-का जिक्र करते हुए भगवानने प्रथम की है। यह श्लोककी रचनाकी सुविधाके लिए है या अभयका पहला स्थान होना चाहिये इसलिए है, इस बहसमें मैं नहीं उतरूंगा; ऐसा निर्णय[5] करनेकी मुझमें लियाक़त भी नहीं है। मेरी रायमें अभयको सहज ही पहला स्थान मिला हो, तो भी वह उसके लायक़ ही है। बिना अभयके दूसरी संपतें नहीं मिलेंगी। बिना अभयके सत्यकी खोज कैसे हो? बिना अभयके अहिंसाका पालन कैसे हो? 'हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं

१. कामवाला। २. दम-बेदम। ३. परख। ४. सेवामें लगा रहनेवाला। ५. फ़ैसला।

कायरनुं काम जोने' (हरिका मार्ग शूरका मार्ग है, उसमें कायरका काम नहीं)। सत्य ही हरि, वही राम, वही नारायण, वही वासुदेव है। कायर यानी डरा हुआ, बुज़दिल; शूर यानी भयसे मुक्त, तलवार वग़ैरासे लैस नहीं। तलवार बहादुरकी निशानी नहीं है, डरपोककी निशानी है।

अभयका मतलब है तमाम बाहरी भयोंसे मुक्ति[1]। मौतका डर, धन-दौलत लुट जानेका डर, कुटुंब-कबीलेके बारेमें डर, रोगका डर, हथियार चलनेका डर, आबरूका डर, किसीको बुरा लगानेका—चोट पहुंचानेका डर, इस तरह डरकी फेहरिस्त जितनी बढ़ाना चाहें हम बढ़ा सकते हैं। एक मौतका भय जीता कि सब भयोंको जीत लिया, ऐसा आम तौर पर कहा जाता है। लेकिन यह ठीक नहीं लगता। बहुतसे लोग मौतका डर छोड़ देते हैं, फिर भी वे तरह तरहके दुःखोंसे भागते हैं। कुछ लोग ख़ुद मरनेको तैयार होते हैं, लेकिन सगे-सम्बन्धियोंका बिछोह बरदाश्त नहीं कर सकते। कोई कंजूस यह सब छोड़ देगा, देह भी छोड़ देगा, लेकिन जमा किया हुआ धन छोड़ते झिझकेगा। कोई आदमी अपनी मानी हुई इज़्ज़त-आबरू बनाये रखनेके लिए बहुत कुछ स्याह-सफ़ेद[2] करनेको तैयार हो जायेगा और करेगा। कोई जगतकी निन्दा[3]के भयसे सीधी राह जानते हुए भी उसे पकड़ते हिचकिचायेगा। सत्यकी खोज करनेवालेको इन सब भयोंको छोड़े सिवा चारा नहीं। हरिश्चंद्रकी तरह बरबाद

१. छुटकारा। २. भला-बुरा। ३. बदगोई।

होनेकी उसकी तैयारी होनी चाहिये । हरिश्चंद्रकी कथा भले ही मनगढ़ंत हो, लेकिन उसमें सब आत्मार्थियों (आत्माका कल्याण चाहनेवालों) का अनुभव भरा हुआ है; इसलिए उस कथाकी क़ीमत किसी तारीख़ी[१] कथासे अनंतगुनी[२] ज़्यादा है और हम सबको उसे अपने पास रखना चाहिये और उस पर ग़ौर करना चाहिये ।

अभय-व्रतका पूरी तरह पालन करना लगभग नामुमकिन है । तमाम भयोंसे मुक्ति तो वही मनुष्य पा सकता है, जिसे आत्माके दर्शन हुए हों । अभय अमूर्छ[३] दशाकी आख़िरी हद[४] है। निश्चय करनेसे[५], लगातार कोशिश करनेसे और आत्मामें श्रद्धा बढ़नेसे अभयकी मात्रा बढ़ सकती है । मैंने शुरूमें ही कहा है कि हमें बाहरी भयोंसे मुक्ति पानी है । अन्दर जो दुश्मन हैं उनसे तो डरकर ही चलना है। काम, क्रोध वग़ैराका भय सच्चा भय है । उसे जीत लें तो बाहरी भयोंकी परेशानी अपने-आप मिट जायगी । तमाम भय देहको लेकर हैं । अगर देहकी ममता छूटे तो आसानीसे अभय प्राप्त[६] हो जाय । इस तरह सोचते हुए हम देखेंगे कि तमाम भय हमारी ख़याली पैदावार हैं । पैसेमें से, कुटुम्बमें से, शरीरमें से 'मेरा'-पन निकाल दें, तो भय कहां रहा जाता है? 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' (उसे तजकर भोगो) —यह रामबाण वचन है । कुटुम्ब, पैसा, देह ज्योंके त्यों रहें । उनके बारेमें हमें अपनी कल्पना[७] बदलनी होगी । वे

१. ऐतिहासिक। २. बेहद। ३. नाग़ाफ़िल। ४. पराकाष्ठा। ५. ठान लेनेसे। ६. हासिल। ७. ख़याल।

'हमारे' नहीं हैं, 'मेरे' नहीं हैं। वे ईश्वरके हैं; 'मैं' भी उसीका हूं; इस जगतमें 'मेरा' ऐसा कुछ है ही नहीं। फिर मुझे भय काहेका? इसीलिए उपनिषद्कारने कहा: 'उसे तजकर भोगो'। इसलिए हम उसके रखवाले बनें, वह उसकी रखवालीके लिए ज़रूरी सामान और शक्ति हमें देगा। यों हम स्वामी[1] मिटकर सेवक बनें, शून्य जैसे (कुछ नहीं) होकर रहें, तो आसानीसे तमाम भयोंको जीत लेंगे, आसानीसे शांति पायेंगे और सत्यनारायणका दर्शन करेंगे।

८

अस्पृश्यता-निवारण[2]

ता. ९-९-'३०
मंगल-प्रभात

यह व्रत भी अस्वाद-व्रतकी तरह नया है और कुछ विचित्र भी लगेगा। यह जितना विचित्र[3] है उससे कहीं ज़्यादा ज़रूरी है। अस्पृश्यता यानी अछूतपन; और अखा भगतने ठीक ही गाया है कि 'आभडछेट अदकेरुं अंग' (अछूतपन तो एक गैर-ज़रूरी अंग है, जो छठी उंगलीके समान कामका नहीं)। यह जहां तहां धर्मके नाम पर या धर्मके बहाने धर्मके काममें रुकावट डालता है और धर्मको बिगाड़ता है। अगर आत्मा एक ही है, ईश्वर

---

१. मालिक। २. अछूतपन मिटाना। ३. अजीब।

एक ही है, तो अछूत कोई नहीं। जैसे ढेढ़, भंगी अछूत माने जाते हैं, लेकिन अछूत नहीं हैं, वैसे मुरदा भी अछूत नहीं है, वह सम्मान और करुणा, इज़्ज़त और रहमके लायक़ है। किसी मुरदेको छूकर या तेल लगाकर या हज़ामत कर-कराकर अगर लोग नहाते हैं, तो वह सिर्फ़ आरोग्य—तंदुरुस्तीके खयालसे ही। मुरदेको छूकर या तेल लगाकर अगर कोई नहाता नहीं है, तो वह गंदा भले ही कहा जाय, लेकिन पातकी नहीं है, पापी नहीं है। यों तो भले ही माता बच्चेका मैला उठाकर जब तक न नहाये या हाथ-पैर न धोये तब तक अछूत गिनी जाय, लेकिन बच्चा लाड़ करता हुआ, खेलता हुआ उसे छू ले तो उसे (बच्चेको) छूत लगनेवाली नहीं है, न उसकी आत्मा मलिन[१] होगी। लेकिन जो नफ़रतके कारण भंगी, ढेढ़, चमार वग़ैरा नामसे पहचाना जाता है, वह तो जनमसे अछूत माना जाता है। भले ही उसने सैकड़ों साबुनोंसे बरसों तक शरीरको मला हो, भले ही वह वैष्णवकी पोशाक पहनता हो, माला-कंठी धारण करता हो; भले ही वह रोज़ गीतापाठ करता हो और लेखकका धन्धा करता हो, तो भी वह अछूत माना जाता है। इस प्रकार जो धर्म माना जाता है या बरता जाता है, वह धर्म नहीं है, अधर्म है और नाश होने लायक़ है। अस्पृश्यता-निवारणको व्रतकी जगह देकर हम ज़ाहिर करते हैं कि अछूतपन हिन्दू धर्मका अंग नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि वह हिन्दू धर्ममें

---

१. मैली।

पैठी हुई एक सड़न है, वहम है, पाप है; और उसे मिटाना हरएक हिन्दूका धर्म है, उसका परम कर्तव्य[१] है । इसलिए जो उसे पाप मानता है वह उसका प्रायश्चित्त[२] करे और कुछ नहीं तो प्रायश्चित्तके तौर पर ही समझदार हिन्दू अपना धर्म समझ कर हरएक अछूत माने जानेवाले भाई या बहनको अपनावे; प्रेमसे और सेवाभावसे उसे छुए, छूकर अपनेको पावन[३] हुआ माने, 'अछूतों' के दुःख दूर करे । वे बरसोंसे कुचले गये हैं, इसलिए उनमें अज्ञान वग़ैरा जो दोष आ गये हैं उन्हें धीरजसे दूर करनेमें उनकी मदद करे और ऐसा करनेके लिए दूसरे हिन्दुओंको समझाये, प्रेरणा दे । इस निगाहसे अछूतपनको देखने पर उसे दूर करनेमें जो दुनियावी या राजनीतिक[४] नतीजे समाये हुए हैं, उन्हें व्रतधारी[५] तुच्छ[६] समझेगा। यह या ऐसा नतीजा आये या न आये, फिर भी अछूतपन मिटानेके कामको जिसने अपना व्रत बना रखा है, वह धर्म समझकर अछूत माने जानेवाले लोगोंको अपनायेगा । सत्य वग़ैराका आचरण करते हुए हम दुनियावी नतीजोंका विचार न करें। सत्यका आचरण उस व्रतधारीके लिए एक तरकीब नहीं है, वह तो उसकी देहके साथ जड़ी हुई चीज़ है, उसका स्वभाव है; उसी तरह अस्पृश्यता-निवारण भी उस व्रतधारीके लिए तरकीब नहीं है, लेकिन उसका स्वभाव है । इस व्रतका महत्त्व समझनेके बाद हमें मालूम होगा कि यह अछूतपनकी सड़न सिर्फ़

१. फ़र्ज़। २. कफ़्फ़ारा। ३. पाक। ४. सियासी। ५. व्रत पालनेवाला। ६. नाचीज़।

ढेढ़-भंगी माने जानेवालोंके बारेमें ही हिन्दू समाजमें पैठ गयी है ऐसा नहीं है। सड़नका स्वभाव है कि वह पहले राईके दानेके बराबर दीखती है, बादमें पहाड़का रूप ले लेती है और अन्तमें जिसमें दाखिल होती है उसका नाश कर देती है। अछूतपनका भी ऐसा ही है। यह छुआछूत दूसरे धर्मवालोंके साथ बरती जाती है, दूसरे फ़िरकेवालोंके साथ बरती आती है, एक ही संप्रदाय[1]के भीतर भी घुस गई है; यहां तक कि कुछ लोग तो छुआछूतको पालते पालते इस पृथ्वी पर भाररूप हो गये हैं। वे अपना ही संभालनें, खुदको ही सहलाने (आंच न आने देनें) या बचाते फिरने, नहाने-धोनें, खाने-पीनेसे फ़ुरसत नहीं पाते और ईश्वरको भूल कर ईश्वरके नामसे ख़ुदको पूजने लग जाते हैं। इसलिए अछूतपनको मिटानेवाला आदमी सिर्फ़ ढेढ़-भंगीको अपनाकर संतोष नहीं मानेगा; जब तक वह तमाम जीवोंको अपनेमें नहीं देखता और अपनेको तमाम जीवोंमें नहीं होम देता, नहीं मिटा देता, तब तक वह शांत होगा ही नहीं। अछूतपन मिटाना यानी तमाम जगतके साथ दोस्ती रखना, उसका सेवक बनना। यों अस्पृश्यता-निवारण और अहिंसाकी जोड़ी बन जाती है; और सचमुच है भी। अहिंसाका अर्थ है तमाम जीवोंके लिए पूरा प्रेम। अछूतपन मिटानेका भी वही अर्थ है। तमाम जीवोंके साथका भेद मिटाना अछूतपन मिटाना है। इस तरह अछूतपनको देखनेसे मालूम होगा कि यह दोष[2] थोड़ा-बहुत सारे जगतमें फैला हुआ है। यहां हमने उसका

---

१. फ़िरका। २. ख़राबी।

हिन्दू धर्मकी सड़नके रूपमें विचार किया है, क्योंकि उसनें हिन्दू धर्ममें धर्मका स्थान हथिया लिया है और धर्मके बहानें लाखों या करोड़ों लोगोंकी हालत ग़ुलामों जैसी कर डाली है।

९
ज़ात-मेहनत

ता. १६–९–'३०
मंगल-प्रभात

ज़ात-मेहनत तमाम मनुष्योंके लिए लाज़िमी है, यह बात पहले-पहल टॉल्स्टॉयका एक निबन्ध पढ़कर मेरे मनमें बैठ गई। यह बात इतनी साफ़ जाननेंके पहले भी इस पर अमल तो मैं रस्किनका 'अन्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) पढ़कर तुरन्त करनें लग गया था। ज़ात-मेहनत अंग्रेज़ी शब्द 'ब्रेड लेबर' का अनुवाद है। 'ब्रेड लेबर' का शब्दके मुताबिक़ अनुवाद है रोटी (के लिए) मज़दूरी। रोटीके लिए हरएक मनुष्यको मज़दूरी करनी चाहिये, शरीरको (कमरको) झुकाना चाहिये, यह ईश्वरका क़ानून है। यह मूल खोज टॉल्स्टॉयकी नहीं है, लेकिन उनसे बहुत कम मशहूर रशियन लेखक बोन्दरेव्ह (T. M. Bondarev) की है। टॉल्स्टॉयनें उसे रोशन किया और अपनाया। इसकी झांकी मेरी आंखें भगवद्‌गीताके तीसरे अध्याय[१] में करती हैं। यज्ञ किये बिना जो खाता है वह चोरीका अन्न खाता है, ऐसा कठोर शाप[२]

१. बाब। २. सख़्त बददुआ।

यज्ञ नहीं करनेवालेको दिया गया है। यहां यज्ञका अर्थ ज़ात-मेहनत या रोटी-मज़दूरी ही शोभता[1] है और मेरी रायमें यही हो सकता है। जो भी हो, हमारे इस व्रतका जन्म इस तरह हुआ है। बुद्धि भी उस चीज़की ओर हमें ले जाती है। जो मज़दूरी नहीं करता उसे खानेका क्या हक है? बाइबल कहती है: "अपनी रोटी तू अपना पसीना बहाकर कमा और खा।" करोड़पति भी अगर अपने पलंग पर लोटता रहे और उसके मुंहमें कोई खाना डाले तब खाये, तो वह ज़्यादा देर तक खा नहीं सकेगा; इसमें उसे मज़ा भी नहीं आयेगा। इसलिए वह कसरत वग़ैरा करके भूख पैदा करता है और खाता तो है अपने ही हाथ-मुंह हिलाकर। अगर यों किसी न किसी रूपमें अंगोंकी कसरत राय-रंक सबको करनी ही पड़ती है, तो रोटी पैदा करनेकी कसरत ही सब क्यों न करें? यह सवाल कुदरती तौर पर उठता है। किसानको हवाखोरी या कसरत करनेके लिए कोई कहता नहीं है और दुनियाके ९० फीसदीसे भी ज़्यादा लोगोंका गुजारा खेती पर होता है। बाक़ीके दस फीसदी लोग अगर इनकी नक़ल करें, तो जगतमें कितना सुख, कितनी शांति और कितनी तंदुरुस्ती फैल जाये? और अगर खेतीके साथ बुद्धि भी मिल जाय, तो खेतीसे सम्बन्ध रखनेवाली बहुतसी मुसीबतें आसानीसे दूर हो जायेंगी। फिर, अगर इस ज़ात-मेहनतके निरपवाद[2] क़ानूनको सब लोग मानें, तो ऊंच-नीचका भेद मिट जाय। आज तो जहां ऊंच-नीचकी बू भी नहीं

---

१. फबता। २. ग़ैर-मुस्तसना।

थी वहां यानी वर्ण-व्यवस्थामें भी वह घुस गई है । मालिक-मज़दूरका भेद आम और कायम हो गया है और ग़रीब आदमी धनवानसे जलता है । अगर सब लोग रोटीके लिए मज़दूरी करें, तो ऊंच-नीचका भेद न रहे; और फिर भी धनिक वर्ग रहेगा तो वह ख़ुदको मालिक नहीं बल्कि उस धनका रखवाला या ट्रस्टी मानेगा और उसका ज़्यादातर उपयोग सिर्फ़ लोगोंकी सेवाके लिए करेगा । जिसे अहिंसाका पालन करना है, सत्यकी भक्ति करनी है, ब्रह्मचर्यको कुदरती बनाना है, उसके लिए तो ज़ात-मेहनत रामबाण-सी हो जाती है । यह मेहनत सचमुच तो खेतीमें ही होती है । लेकिन सब लोग खेती नहीं कर सकते, ऐसी हालत आज तो है ही। इसलिए खेतीके आदर्श[१]को ख़यालमें रखकर खेतीके बदलेमें आदमी भले दूसरी मज़दूरी करे — जैसे कताई, बुनाई, बढ़ईगिरी, लुहारी वग़ैरा वग़ैरा ।

सबको ख़ुदके भंगी तो बन ही जाना चाहिये । जो खाता है वह टट्टी फिरेगा ही । जो आदमी टट्टी फिरता है वही अपनी टट्टीको ज़मीनमें गाड़ दे, यह उत्तम रिवाज है । अगर यह नहीं ही हो सके, तो प्रत्येक कुटुम्ब अपना यह फ़र्ज़ अदा करे । जिस समाजमें भंगीका अलग पेशा माना गया है, वहां कोई बड़ा दोष पैठ गया है, ऐसा मुझे तो बरसोंसे लगता रहा है । इस ज़रूरी और तंदुरुस्ती बढ़ानेवाले (आरोग्य-पोषक) कामको सबसे नीच काम पहले-पहल किसने माना, इसका इतिहास[२] हमारे पास नहीं है ।

---

१. मक़सद। २. तारीख़।

जिसने माना उसने हम पर उपकार[1] तो नहीं ही किया। हम सब भंगी हैं, यह भावना[2] हमारे मनमें बचपनसे ही जम जानी चाहिये; और उसका सबसे आसान तरीक़ा यह है कि जो लोग समझ गये हैं, वे ज़ात-मेहनतका आरंभ पाख़ाना-सफ़ाईसे करें। जो समझ-बूझकर, ज्ञानपूर्वक यह करेगा, वह उसी क्षणसे धर्मको निराले ढंगसे और सही तरीक़ेसे समझने लगेगा।

बालक, बूढ़े और बीमारीसे अपंग[3] बने हुए लोग अगर मज़दूरी न करें, तो उसे कोई अपवाद न समझे। बालक अपनी मांमें समा जाता है। अगर कुदरतके क़ानूनका भंग न किया जाय, तो बूढ़े अपंग नहीं बनेंगे; और उन्हें बीमारी तो होगी ही क्यों?

१०

सर्वधर्म-समभाव–१

ता. २३–९–'३०
मंगल-प्रभात

हमारे व्रतोंमें जो व्रत सहिष्णुता यानी बरदाश्तके नामसे पहचाना जाता था, उसे यह नया नाम दिया गया है। सहिष्णुता शब्द अंग्रेज़ी शब्द 'टॉलरेशन' का अनुवाद है। यह मुझे पसंद नहीं था, लेकिन दूसरा नाम सूझता नहीं था। काकासाहबको भी वह पसंद नहीं था। उन्होंने सर्वधर्म-समादर शब्द सुझाया। मुझे वह भी पसंद नहीं

१. एहसान। २. ख़याल। ३. अपाहिज।

आया। दूसरे धर्मोंको बरदाश्त करनेमें उनकी (धर्मोंकी) कमी मान ली जाती है। आदरमें मेहरबानीका भाव आता है। अहिंसा हमें दूसरे धर्मोंके लिए समभाव, बराबरीका भाव सिखाती है। आदर और सहिष्णुता अहिंसाकी नज़रसे काफ़ी नहीं हैं। दूसरे धर्मोंके लिए समभाव रखनेके मूलमें अपने धर्मकी अपूर्णताका स्वीकार[१] आ ही जाता है। और सत्यकी आराधना, अहिंसाकी कसौटी यही सिखाती है। संपूर्ण[२] सत्यको अगर हमने देखा होता, तो फिर सत्यका आग्रह किसलिए रहता? तब तो हम परमेश्वर हो जाते; क्योंकि सत्य ही परमेश्वर है, ऐसी हमारी भावना है। हम पूरे सत्यको पहचानते नहीं हैं, इसलिए उसका आग्रह रखते हैं; इसीलिए पुरुषार्थ[३]के लिए जगह है। इसमें हमारी अपूर्णताका स्वीकार आ जाता है। अगर हम अपूर्ण हैं तो हमारी कल्पनाका धर्म भी अपूर्ण है। स्वतंत्र धर्म संपूर्ण है। उसे हमने देखा नहीं है, जैसे ईश्वरको हमने देखा नहीं है। हमारा माना हुआ धर्म अपूर्ण है और उसमें हमेशा हेरफेर हुआ करते हैं, होते रहेंगे। ऐसा हो तभी हम ऊपर और ऊपर उठ सकते हैं; सत्यकी ओर, ईश्वरकी ओर रोज़-रोज़ आगे बढ़ सकते हैं। और अगर आदमीके माने हुए सब धर्मोंको हम अपूर्ण मानें, तो फिर किसीको ऊंचा या नीचा माननेकी बात ही नहीं रहती। सब धर्म सच्चे हैं, लेकिन सब अपूर्ण हैं, इसलिए उनमें दोष[४] हो

---

१. तसलीम, क़बूल। २. पूरा-पूरा। ३. मेहनत, कोशिश। ४. नुक़्स।

सकते हैं। समभाव होने पर भी हम उनमें (सब धर्मोंमें) दोष देख सकते हैं। अपने धर्ममें भी हम दोष देखें। इन दोषोंके कारण उसे (अपने धर्मको) हम छोड़ न दें, लेकिन उसके दोषोंको मिटायें। अगर इस तरह हम समभाव रखें, तो दूसरे धर्मोंमें से जो कुछ लेनें लायक़ हो उसे अपने धर्ममें जगह देनेमें हमें हिचकिचाहट नहीं होगी; इतना ही नहीं बल्कि ऐसा करना हमारा धर्म हो जायेगा।

सब धर्म ईश्वरके दिये हुए हैं, लेकिन वे मनुष्यकी कल्पनाके धर्म हैं। और मनुष्य उनका प्रचार करता है, इसलिए वे अपूर्ण हैं। ईश्वरका दिया हुआ धर्म पहुंचके परे — अगम्य है। मनुष्य उसे (अपनी) भाषामें रखता है, उसका अर्थ भी मनुष्य करता है। किसका अर्थ सच्चा है? सब अपनी अपनी दृष्टिसे, जब तक उस दृष्टिके मुताबिक़ चलते हैं तब तक, सच्चे हैं। लेकिन सबका ग़लत होना भी नामुमकिन नहीं। इसीलिए हम सब धर्मोंकी ओर समभाव रखें। इससे अपने धर्मके लिए हममें उदासीनता[1] नहीं आती, लेकिन अपनें धर्मके लिए हमारा जो प्रेम है वह अंधा न होकर ज्ञानवाला (ज्ञानमय) बनता है और इसलिए वह ज़्यादा सात्त्विक, ज़्यादा निर्मल बनता है। सब धर्मोंकी ओर समभाव हो तभी हमारे दिव्य चक्षु[2] खुलेंगे। धर्मांधता[3]में और दिव्य दर्शनमें उत्तर-दक्षिणका अंतर है। धर्मका ज्ञान होने पर अड़चनें दूर होती हैं और समभाव पैदा होता है। यह समभाव मनमें बढ़ाकर हम अपनें धर्मको ज़्यादा पहचानेंगे।

---

१. लापरवाही। २. भीतरकी आंखें। ३. मज़हबी तास्सुब।

यहां धर्म-अधर्मका भेद नहीं मिटता। यहां तो जिन धर्मों पर मुहर लगी हुई हम जानते हैं उनकी बात है। इन सब धर्मोंमें मूल सिद्धान्त – बुनियादी उसूल – तो एक ही हैं। इन सबमें संत स्त्री-पुरुष हो गये हैं, आज भी मौजूद हैं। इसलिए धर्मोंके लिए समभावमें और धर्मियों — मनुष्यों — के लिए समभावमें कुछ फ़र्क़ है। सारे मनुष्योंके लिए — दुष्ट[1] और श्रेष्ठ[2] के लिए, धर्मी और अधर्मीके लिए समभावकी ज़रूरत है, लेकिन अधर्मके लिए कभी नहीं।

तब सवाल यह उठता है कि बहुतसे धर्म किसलिए? धर्म बहुतसे हैं यह हम जानते हैं। आत्मा एक है, लेकिन मनुष्य-देह अनगिनत हैं। देहोंका यह अनगिनतपन टाले नहीं टलता। फिर भी आत्माकी एकताको हम पहचान सकते हैं। धर्मका मूल एक है, जैसे पेड़का; लेकिन उसके पत्ते अनगिनत हैं।

११
सर्वधर्म-समभाव – २

ता. ३०–९–'३०
मंगल-प्रभात

यह विषय[3] ऐसा अहम[4] है कि यहां मैं उसे ज़रा बढ़ाना चाहता हूं। अपना कुछ तजरबा मैं बताऊं तो समभावका अर्थ शायद ज़्यादा स्पष्ट होगा। जैसे यहां प्रार्थना रोज होती है वैसे ही फिनिक्समें भी रोज़ प्रार्थना हुआ

१. बुरेसे बुरा। २. अच्छेसे अच्छा। ३. मसला। ४. महत्त्वका।

करती थी। उसमें हिन्दू, मुसलमान और ईसाई थे। मरहूम रुस्तमजी सेठ और उनके बच्चे अनेक बार उसमें शामिल होते थे। रुस्तमजी सेठको 'मनें वहालुं वहालुं दादा रामजीनुं नाम' भजन बहुत पसंद था। मुझे जहां तक याद है, एक बार मगनलाल (गांधी) या काशी (बहन) वह भजन हम सबको गवा रही थी। रुस्तमजी सेठ हर्षमें बोल उठे: "'दादा रामजी' के बदले 'दादा होरमज़्द' गाओ न।" गवानेवालोंनें और गानेवालोंने यह विचार बिलकुल सहज भावसे अपना लिया और तबसे जब रुस्तमजी सेठ हाज़िर हों तब अचूक रूपमें और वे न हों तब कभी कभी हम वह भजन 'दादा होरमज़्द' के नामसे गाते थे। मरहूम दाऊद सेठका बेटा मरहूम हुसेन तो आश्रममें बहुत बार रहता था। वह प्रार्थनामें उत्साहसे शामिल होता था। वह खुद बहुत मीठे सुरमें 'ऑर्गन' के साथ 'ये बहारे बाग़ दुनिया चंद रोज़' गाता था। वह भजन हम सबको उसनें सिखा दिया था तथा प्रार्थनामें बहुत दफ़ा गाया जाता था। हमारे यहांकी प्रार्थनामालामें उसे जो स्थान मिला है वह सत्यप्रिय हुसेनकी यादगारमें मिला है। उससे ज़्यादा चुस्तीसे सत्यका पालन करनेवाले नौजवान मैंने देखे नहीं हैं। जोसेफ़ रॉयपेन आश्रममें अनेक बार आते-जाते थे। वे ईसाई थे। उन्हें 'वैष्णव जन' भजन बहुत पसन्द था। वे संगीत बहुत अच्छा जानते थे। उन्होंने 'वैष्णव जन' की जगह 'क्रिश्चियन जन तो तेने कहीए' अलापा। सबने तुरन्त उसे उठा लिया। जोसेफ़के हर्ष[१] का पार न रहा।

---

१. खुशी।

अपनें संतोषके लिए जब मैं जुदा जुदा धर्मोंकी पुस्तकें देख रहा था तब ईसाई धर्म, इस्लाम, जरथुस्ती, यहूदी और हिन्दू — इतनें धर्मोंकी पुस्तकोंकी मैंने अपनें संतोषके लिए जानकारी की । यह करते हुए इन सब धर्मोंकी ओर मेरे मनमें समभाव था, ऐसा मैं कह सकता हूं । उस समय मुझे यह ज्ञान था ऐसा मैं नहीं कहता । 'समभाव' शब्दकी भी पूरी जानकारी उस वक़्त मुझे नहीं होगी । लेकिन उस समयके अपनें स्मरण ताजे करता हूं, तो मुझे इन धर्मोंकी टीका-टिप्पणी[१] करनेंकी इच्छा भी कभी हुई हो ऐसा याद नहीं आता । बल्कि उनकी पुस्तकोंको धर्मकी पुस्तकें समझ कर मैं आदरसे पढ़ता था और सबमें मूल नीतिके उसूल एकसे देखता था । कुछ बातें मेरी समझमें नहीं आती थीं । ऐसा ही हिन्दू धर्म-पुस्तकोंका था । ऐसी तो कितनी ही बातें हैं, जो आज भी मेरी समझमें नहीं आतीं । लेकिन अनुभवसे मैं देखता हूं कि जिसे हम समझ न सकें वह ग़लत ही है, ऐसा माननेकी जल्दबाज़ी करना भूल है । जो कुछ पहले मेरी समझमें नहीं आता था, वह आज दीयेके जैसा साफ़ मालूम होता है । अपनें भीतर समभाव बढ़ानेसे बहुतसी गुत्थियां अपनें-आप सुलझ जाती हैं; और जहां हमें दोष ही दिखाई दे वहां उसे दिखानेमें भी जो नम्रता और विनय[२] हममें होता है, उसके कारण किसीको दुःख नहीं होता ।

एक उलझन शायद रहती है । पहले मंने कहा है कि धर्म-अधर्मका भेद रहता है, और अधर्मके लिए समभाव

१. नुक़्ताचीनी । २. अदब ।

रखनेका यहां उद्देश्य नहीं है । अगर ऐसा ही हो तो क्या धर्म-अधर्मका निर्णय[1] करनेमें ही समभावकी सांकल टूट नहीं जाती ?—ऐसा सवाल उठेगा और ऐसा (धर्म-अधर्मका) निर्णय करनेवाला ग़लती करे यह भी मुमकिन है । लेकिन अगर हममें सच्ची अहिंसा हो, तो हम बैर-भावसे बच जाते हैं; क्योंकि अधर्मको देखते हुए भी अधर्म आचरनेवाले, बरतनेवालेके लिए तो हमारे मनमें प्रेमभाव ही होगा । और इसलिए या तो वह हमारी दृष्टि[2] अपनायेगा या हमारी ग़लती हमें दिखायेगा; या दोनों एक-दूसरेके मतभेदको बरदाश्त करेंगे । आख़िर, सामनेवाला आदमी अगर अहिंसक नहीं होगा, तो वह सख़्ती करेगा; लेकिन अगर हम अहिंसाके सच्चे पुजारी होंगे, तो हमारी नरमी उसकी सख़्तीको दूर करेगी ही इसमें शक नहीं । दूसरोंकी ग़लतीके ख़ातिर भी हमें उन्हें दुःख नहीं देना है, ख़ुद ही दुःख उठाना है — यह सुनहला नियम जो पालता है, वह सब संकटोंसे उबर जाता है।

१२
नम्रता

ता. ७–१०–'३०
मंगल-प्रभात

इसका व्रतोंमें अलग स्थान नहीं है और न हो सकता है । अहिंसाका यह एक अर्थ है, या यों कहें कि अहिंसाके अंदर नम्रता आ जाती है । लेकिन नम्रता कोशिश करके

१. फ़ैसला । २. नुक़्त-ए-नज़र ।

लानेसे नहीं आती । वह तो स्वभावमें ही आ जानी चाहिये । जब पहले-पहल आश्रमकी नियमावलि बनाई गई, तो उसका मसविदा मित्रवर्गको भेजा गया था । सर गुरुदास बैनरजीनें नम्रताको व्रतोंमें स्थान देनेकी सूचना की थी; और उस वक़्त भी उसे व्रतोंमें शामिल न करनेका मैंने वही कारण बताया था, जो मैं यहां लिख रहा हूं । लेकिन अगरचे उसे व्रतोंमें स्थान नहीं है, फिर भी वह व्रतोंसे शायद ज़्यादा ज़रूरी है; ज़रूरी तो है ही । लेकिन किसीनें नम्रता मश्कसे — अभ्याससे पाई हो, ऐसा जाननेमें नहीं आया । सत्यकी आदत डाली जा सकती है, दयाकी आदत डाली जा सकती है, (लेकिन) नम्रताकी आदत डालना दंभकी आदत डालने जैसा कहा जा सकता है । यहां नम्रता वह चीज़ नहीं है, जो बड़े लोगोंमें एक-दूसरेके सम्मानके लिए सिखाई जाती है, या जिसकी तालीम दी जाती है । कोई किसीको धरती पर लंबा होकर प्रणाम करता हो, लेकिन मनमें तो उसके बारेमें नफ़रत ही भरी हो, तो यह नम्रता नहीं है – चालाकी है । कोई रामनाम रटा करे, माला फेरता रहे, मुनि जैसा बनकर समाजमें बैठे, पर उसके भीतर अगर स्वार्थ[1] भरा हो, तो वह नम्र नहीं बल्कि ढोंगी है । नम्र मनुष्य ख़ुद नहीं जानता कि कब वह नम्र होता है । सत्य वग़ैराका माप हम अपने पास रख सकते हैं, लेकिन नम्रताका कोई माप नहीं होता । कुदरती नम्रता छिपी नहीं रहती । फिर भी नम्र मनुष्य ख़ुद उसे देख नहीं सकता । वसिष्ठ और

---

१. ख़ुदग़रज़ी ।

विश्वामित्रकी मिसाल तो हम आश्रममें बहुत बार समझ चुके हैं। हमारी नम्रता शून्यताकी हद तक जानी चाहिये। हम कुछ हैं ऐसा भूत मनमें पैठा कि नम्रता ग़ायब हो गई और हमारे सब व्रत मिट्टीमें मिल गये। व्रतका पालन करनेवाला अगर मनमें अपने व्रत-पालनका घमंड रखे, तो व्रतोंकी क़ीमत खो बैठे और समाजमें ज़हर सरीखा हो जाय। उसके व्रतकी क़ीमत न तो समाज करेगा, न वह ख़ुद उसका फल भोग सकेगा। नम्रताके मानी हैं 'मं' का बिलकुल क्षय यानी मिट जाना। सोचनेसे मालूम हो जाता है कि इस जगतमें सारे जीव एक रजकण — ज़र्रेके बराबर भी नहीं हैं। शरीरके रूपमें हम क्षणजीवी हैं। कालके अनंत चक्रमें सौ सालका प्रमाण निकाला ही नहीं जा सकता। लेकिन अगर उस चक्करमें से हम निकल जायं — यानी 'कुछ नहीं' बन जायं, तो सब-कुछ हो जायं। 'कुछ' होना यानी ईश्वरसे — परमात्मासे — सत्यसे अलग होना। 'कुछ' का मिट जाना यानी परमात्मामें मिल जाना। समुद्रमें रही हुई बूंद समुद्रकी बड़ाई[१]को भोगती है, लेकिन इसका उसे ज्ञान नहीं होता। ज्यों ही वह समुद्रसे अलग हुई और अपनेपन[२]का दावा करने लगी उसी दम वह सूख गई। इस जीवनको पानीके बुलबुलेकी जो उपमा दी गई है, उसमें मैं ज़रा भी अतिशयोक्ति[३] नहीं देखता। ऐसी नम्रता — शून्यता — आदत डालनेसे कैसे आ सकती है? लेकिन व्रतोंको सही ढंगसे समझनेसे नम्रता अपने-आप आने लगती है। सत्यका पालन

१. महत्ता। २. ख़ुदी। ३. मुबालिगा।

करनेंकी इच्छा रखनेंवाला अहंकारी[१] कैसे हो सकता है? दूसरेके लिए प्राण न्योछावर करनेंवाला आदमी अपनी जगह बनानें कहां जाय? उसनें तो जब प्राण न्योछावर करनेका तय किया तभी अपनी देहको फेंक दिया था।

ऐसी नम्रताका मतलब पुरुषार्थका अभाव (न होना) तो नहीं है? ऐसा अर्थ हिन्दू धर्ममें कर ही डाला गया है। और इसीलिए आलसको और पाखंड[२]को बहुतेरे स्थानोंमें जगह मिल गई है। सचमुच तो नम्रताके मानी हैं तीव्रतम पुरुषार्थ, सख़्तसे सख़्त मेहनत। लेकिन यह सब परमार्थके लिए होना चाहिये। ईश्वर ख़ुद चौबीसों घण्टे एक सांससे काम करता रहता है, अंगड़ाई लेनें तककी फ़ुरसत नहीं लेता। उसके हम हो जायं, उसमें हम मिल जायं, तो हमारा उद्यम[३] उसके जैसा ही अतंद्रित[४] हो जायगा — होना चाहिये। समुद्रसे अलग हुई बूंदके लिए हम आरामकी कल्पना कर सकते हैं, लेकिन समुद्रमें रहनेंवाली बूंदको आराम कैसे मिल सकता है? समुद्रको एक क्षणका, एक पलका भी आराम कहां है? उसी तरह हमारा है। ईश्वर-रूपी समुद्रमें हम मिल गये कि हमारा आराम गया, आरामकी ज़रूरत भी गई। वही सच्चा आराम है, वही महा-अशांतिमें शांति है। इसलिए सच्ची नम्रता हमसे तमाम जीवोंकी सेवाके लिए सब-कुछ न्योछावर करनेंकी आशा रखती है। सब-कुछ ख़तम होनेके बाद हमारे पास न इतवार रहता,

१. मग़रूर, घमंडी। २. ढोंग। ३. कामकाज़। ४. नाग़ाफ़िल, जाग्रत।

न शुक्रवार, न सोमवार। इस दशाका वर्णन करना मुश्किल है, लेकिन वह अनुभवसे जानी जा सकती है। जिसनें सब-कुछ न्योछावर कर दिया है, उसनें इसका अनुभव किया है। हम सब इसका अनुभव कर सकते हैं। इसका अनुभव करनेके इरादेसे हम आश्रममें इकट्ठा हुए हैं। सब व्रत, सब कामकाज इस दशाका अनुभव करनेंके लिए हैं। यह या वह, कुछ न कुछ करते करते वह दशा किसी दिन हमारे हाथ लग जायेगी। उसीको ढूंढ़नें जानेंसे वह मिलनेवाली नहीं है।

१३
स्वदेशी

प्रवचनोंमें ‘ स्वदेशी ’ पर (जेलसे) लिखना मैं रहनें दूंगा; (क्योंकि) राजनीतिसे संबंध रखनेंवाले विषयको न छेड़नेका मेरा जो संकल्प है, उसमें ऐसा करनेंसे कुछ कमी आ जायगी। स्वदेशीके बारेमें सिर्फ़ धार्मिक दृष्टिसे लिखने पर भी कुछ ऐसा लिखना होगा, जिसका राजनीतिके साथ परोक्ष (कुछ दूरका) संबंध हो।

१४

स्वदेशी-व्रत

स्वदेशी-व्रत इस युगका एक महाव्रत है। जो चीज़ आत्माका धर्म है, लेकिन अज्ञान या दूसरे कारणोंसे आत्माको जिसका भान[१] नहीं रहा, उसके पालनके लिए व्रत लेनेकी ज़रूरत होती है। जो स्वभावसे मांस नहीं खानेवाला है, उसे मांस न खानेका व्रत नहीं लेना पड़ता। मांस उसके लिए लालच नहीं है; इतना ही नहीं, मांसको देखते ही उसे उलटी हो जायगी।

स्वदेशी आत्माका धर्म है, लेकिन वह बिसर गया है। इसलिए उसके बारेमें व्रत लेनेकी ज़रूरत है। आत्माके लिए स्वदेशीका आख़िरी अर्थ है सारे स्थूल यानी दुनियावी संबंधोंसे पूरा छुटकारा। देह भी उसके लिए परदेशी है, क्योंकि देह दूसरी आत्माओंके साथ एकता साधनेमें उसे रोकती है, उसके मार्गका रोड़ा बनती है। तमाम जीवोंके साथ एकता साधते हुए स्वदेशी-धर्मको जाननेवाला और पालनेवाला आदमी देहको भी छोड़ देगा। यह अर्थ सही हो तो हम आसानीसे समझ जायेंगे कि अपने पासके लोगोंकी सेवामें लगे रहना, ओतप्रोत होना यह स्वदेशी-धर्म है। ऐसी सेवा करनेमें दूरके लोग रह जाते हैं, या उनको नुक़सान पहुंचता है,

---

१. ज्ञान, सुध।

ऐसा आभास होना संभव है। लेकिन वह आभास[1] ही होगा। स्वदेशीकी शुद्ध सेवा करते हुए परदेशीकी भी शुद्ध सेवा होती ही है। जैसा पिण्डमें वैसा ब्रह्माण्डमें।

इससे उलटा, दूरकी सेवा करनेका मोह रखनेसे वह तो होती नहीं और पड़ोसीकी सेवा भी रह जाती है। यों बाबाके दोनों — इधर उधर दोनों — बिगड़ते हैं। मुझ पर आधार रखनेवाले कुटुम्बके लोगोंको या गांवमें रहनेवालों-को मैं छोड़ दूं, तो मुझ पर उनका जो आधार होता है वह चला जाता है। दूरके लोगोंकी सेवा करने जानेसे जिसका धर्म उनकी सेवा करनेका है वह उसे भूलता है। संभव है वह दूरके लोगोंको झूठा लाड़-प्यार करता हो; ऐसा करके वहांका वातावरण[2] वह बिगाड़ता है और अपने यहांका वातावरण तो वह बिगाड़ कर ही गया था। यों हर तरहसे उसने नुक़सान ही पहुंचाया। ऐसी अनगिनत मिसालोंका ख़याल करके स्वदेशी-धर्म साबित किया जा सकता है। इसीलिए 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' (अपना धर्म पालते हुए मौत आये तो अच्छा, लेकिन दूसरेका धर्म ख़तरनाक होता है।) वाक्य निकला है। उसका अर्थ इस तरह ज़रूर किया जा सकता है: 'स्वदेशीका पालन करते हुए मौत हो जाय तो भी अच्छा है, पर परदेशी तो ख़तरनाक ही है।' स्वधर्म यानी स्वदेशी।

स्वदेशीको न समझनेसे ही गड़बड़ी पैदा होती है। कुटुम्ब पर मोह रखकर मैं उसे झूठा लाड़-प्यार करूं, उसके

१. झूठा ख़याल। २. फ़िज़ा।

ख़ातिर धन चुराऊं, दूसरी चालें चलूं, यह स्वदेशी नहीं है। मुझे तो उसके प्रति अपना धर्म पालन करना है। वह धर्म खोजते हुए और उसका पालन करते हुए मुझे सर्वव्यापी, सब जगह फैला हुआ धर्म मिल जायेगा। अपने धर्मके पालनसे दूसरे धर्मवालेको या दूसरे धर्मको नुक़सान पहुंचता ही नहीं, और न पहुंचना चाहिये। अगर पहुंचे तो हमारा माना हुआ धर्म स्वधर्म नहीं बल्कि स्वाभिमान[१] है और इसलिए वह तजने लायक़ है।

स्वदेशीका पालन करते हुए कुटुम्बकी कुरबानी भी करनी पड़ती है। लेकिन ऐसा करना पड़े तो उसमें भी कुटुम्बकी सेवा होनी चाहिये। जैसे ख़ुदको कुरबान करके हम ख़ुदकी रक्षा कर सकते हैं, उसी तरह हो सकता है कि कुटुम्बको कुरबान करके हम कुटुम्बकी रक्षा करते हों। मान लीजिये कि मेरे गांवमें महामारी[२] फैली है। उस बीमारीमें फंसे हुए लोगोंकी सेवामें मैं अपनेको, अपनी पत्नीको, पुत्रोंको और पुत्रियोंको अगर लगाऊं और उस बीमारीमें फंसकर सब मौतकी शरणमें चले जायं, तो मैंने कुटुम्बका नाश[३] नहीं किया, मैंने उसको सेवा ही की है। स्वदेशीमें कोई स्वार्थ[४] नहीं है; अगर है तो वह शुद्ध स्वार्थ है। शुद्ध[५] स्वार्थ यानी परमार्थ; शुद्ध स्वदेशी यानी परमार्थकी आख़िरी हद।

इस विचारधाराके आधार पर मैंने खादीमें सामाजिक[६] शुद्ध स्वदेशी-धर्म देखा है। सब समझ सकें ऐसा इस युगमें, इस देशमें सबको पालनेकी बहुत ज़रूरत हो ऐसा कौनसा

---

१. अपना ग़रूर। २. वबा। ३. ख़ात्मा। ४. ख़ुदग़रज़ी। ५. पाक। ६. समाजी।

स्वदेशी-धर्म हो सकता है? जिसके सहज[1] पालनसे भी हिन्दुस्तानके करोड़ोंकी रक्षा हो सकती है, ऐसा कौनसा स्वदेशी-धर्म है? जवाब मिला — चरखा या खादी।

इस धर्मके पालनसे परदेशी मिलवालोंका नुक़सान होता है, ऐसा कोई न माने। अगर चोरको चुराई हुई चीज़ लौटानी पड़े या चोरी करनेसे रोका जाय, तो उसमें उसे नुक़सान नहीं है, लाभ है। अगर पड़ोसी शराब पीना या अफीम खाना छोड़ दे, तो उससे कलालको या अफीमके दुकानदारको नुक़सान नहीं, लाभ है। अयोग्य[2] ढंगसे जो (अपना) अर्थ[3] साधते हों, उनके उस अनर्थ[4]का अगर नाश हो, तो उससे उन्हें और जगतको लाभ ही है।

लेकिन जो लोग चरखेसे जैसे-तैसे सूत कातकर और खादी पहन-पहनाकर यह मान लेते हैं कि स्वदेशी-धर्मका पूरा पालन हो गया, वे बड़े मोहमें डूबे हुए हैं। खादी सामाजिक स्वदेशीकी प्रथम सीढ़ी है, वह स्वदेशी-धर्मकी आख़िरी हद नहीं है। ऐसे खादीधारी देखे गये हैं, जो और सब चीज़ें परदेशी खरीदते हैं। वे स्वदेशी-धर्मका पालन नहीं करते। वे तो सिर्फ़ चालू बहावमें बह रहे हैं। स्वदेशी-व्रतका पालन करनेवाला हमेशा अपने आसपास निरीक्षण[5] करेगा और जहां जहां पड़ोसियोंकी सेवा की जा सके, यानी जहां जहां उनके हाथका तैयार किया हुआ ज़रूरतका माल होगा वहां दूसरा माल छोड़कर उसे लेगा। फिर भले ही स्वदेशी

---

१. थोड़ा। २. नाजायज़। ३. मतलब। ४. बुरा मतलब। ५. निगाह।

चीज़ पहले-पहल महंगी और घटिया दरजेकी हो । व्रतधारी उसे सुधारनेकी कोशिश करेगा; स्वदेशी ख़राब है इसलिए कायर बनकर परदेशीका इस्तेमाल करने नहीं लग जायेगा ।

लेकिन स्वदेशी-धर्म जाननेवाला अपने कुएंमें डूब नहीं मरेगा । जो चीज़ स्वदेशमें नहीं बनती या बड़ी तकलीफ़से बन सकती हो, वह परदेशके द्वेष (डाह) के कारण अपने देशमें बनाने लग जाय, तो उसमें स्वदेशी-धर्म नहीं है । स्वदेशी-धर्मको पालनेवाला परदेशीका द्वेष कभी नहीं करेगा । इसलिए पूर्ण स्वदेशीमें किसीका द्वेष नहीं है । वह संकुचित[१] धर्म नहीं है । वह प्रेमसे — अहिंसासे — निकला हुआ सुंदर धर्म है ।

१५
व्रतकी ज़रूरत

ता. १४–१०–'३०
मंगल-प्रभात

व्रतके महत्त्व[२]के बारेमें मैंने इस लेखमालामें जहां-तहां छुटपुट लिखा होगा । लेकिन जीवनको गढ़नेके लिए व्रत कितने ज़रूरी हैं, इस पर यहां सोचना मुनासिब लगता है । व्रतोंके बारेमें मैं लिख चुका हूं, इसलिए अब हम उन व्रतोंकी ज़रूरतके बारेमें सोचें ।

ऐसा एक संप्रदाय[३] है, और वह बलवान भी है, जो कहता है: 'अमुक नियमोंका पालन करना ठीक है, लेकिन

१. तंग ख़यालका। २. अहमियत। ३. फ़िरका।

उनके बारेमें व्रत लेनेकी ज़रूरत नहीं है; इतना ही नहीं, वह मनकी कमज़ोरी बताता है और नुक़सान करनेवाला भी हो सकता है। और, व्रत लेनेके बाद ऐसा नियम अड़चन-रूप लगे या पापरूप लगे, तो भी उससे चिपके रहना पड़े यह तो सहन नहीं हो सकता।' वे कहते हैं: 'मिसालके तौर पर शराब न पीना अच्छा है, इसलिए नहीं पीना चाहिये। लेकिन कभी पी ली गयी तो क्या हुआ? दवाके तौर पर तो उसे पीना ही चाहिये। इसलिए उसे न पीनेका व्रत लेना तो गलेमें फंदा डालनेके बराबर है। और जैसा शराबके बारेमें है, वैसा और चीज़ोंके बारेमें है। भलेके लिए हम झूठ भी क्यों न बोलें?' मुझे इन दलीलोंमें कोई वजूद मालूम नहीं होता। व्रतका अर्थ है अडिग निश्चय। अड़-चनोंको पार करनेके लिए ही तो व्रतोंकी आवश्यकता है। अड़चन बरदाश्त करते हुए भी जो टूटता नहीं, वही अडिग निश्चय माना जायेगा। ऐसे निश्चयके बग़ैर मनुष्य लगातार ऊपर चढ़ ही नहीं सकता, ऐसी गवाही सारी दुनियाका अनुभव देता है। जो आचरण पापरूप हो, उसके निश्चयको व्रत नहीं कहा जायेगा। यह राक्षसी — शैतानी वृत्ति है। और जो निश्चय पहले पुण्यरूप लगा हो और आख़िरमें पापरूप साबित हो, उसे छोड़नेका धर्म ज़रूरी हो जाता है। लेकिन ऐसी चीज़के बारेमें कोई व्रत नहीं लेता, और न लेना चाहिये। सब कोई जिसे धर्म मानते हैं, लेकिन जिसे आचरनेकी हमें आदत नहीं पड़ी है, उसके लिए व्रत लेना चाहिये। ऊपरकी मिसालमें तो पापका

सिर्फ़ आभास[१] हो सकता है। 'सच कहनेसे किसीको नुक़सान पहुंचेगा तो?' ऐसा विचार सत्यवादी करने नहीं बैठेगा। सत्यसे इस जगतमें किसीका नुक़सान नहीं होता, न होनेवाला है, ऐसा विश्वास[२] वह रखे। उसी तरह शराब पीनेके बारेमें। या तो उस व्रतमें दवाके तौर पर शराब लेनेकी छूट रखनी चाहिये, या छूट न रखी हो तो व्रत लेनेके पीछे शरीरका ख़तरा उठानेका निश्चय होना चाहिये। दवाके तौर पर भी शराब न पीनेसे देह छूट जाय तो भी क्या हुआ? शराब पीनेसे देह रहेगी ही, ऐसा पट्टा कौन लिखवा सकता है? और, उस क्षण देह टिकी और दूसरे ही क्षण किसी और कारणसे छूट गई, तो उसकी ज़िम्मेवारी किसके सिर होगी? इससे उलटा, देह छूट जाय तो भी शराब न पीनेकी मिसालका चमत्कारी[३] असर शराबकी लतमें फंसे हुए लोगों पर होगा, यह दुनियाका कितना बड़ा फ़ायदा है? 'देह छूटे या रहे, मुझे तो धर्म पालना ही है'— ऐसा भव्य–शानदार निश्चय करनेवाला मनुष्य ही किसी समय ईश्वरकी झांकी कर सकता है। व्रत लेना कमज़ोरीकी निशानी नहीं है, बल्कि बलकी निशानी है। अमुक बात करना ठीक हो तो फिर उसे करना ही है, इसका नाम है व्रत। उसमें ताक़त है। फिर उसे व्रत न कहकर किसी और नामसे पहचानें तो उसमें हर्ज नहीं। लेकिन 'जहां तक हो सकेगा करूंगा' ऐसा कहनेवाला अपनी कमज़ोरीका या अभिमानका दर्शन कराता है; भले वह ख़ुद उसे नम्रता कहे। उसमें नम्रताकी गंध भी नहीं है। 'जहां

१. ग़लत ख़याल। २. यक़ीन। ३. जादुई, हैरतअंगेज़।

तक हो सकेगा' ऐसा वचन शुभ निश्चयोंमें ज़हर जैसा है, यह मैंने तो अपने जीवनमें और बहुतोंके जीवनमें देखा है। 'जहां तक हो सकेगा वहां तक' करनेके मानी हैं पहली ही अड़चन आने पर गिर जाना। 'जहां तक हो सकेगा वहां तक सच्चाईका पालन करूंगा'—इस वाक्य[1]का कोई अर्थ नहीं है। व्यापारमें 'हो सका तो फलां तारीख़को फलां रक़म चुकानेकी' किसी चिट्ठीका कहीं भी चेक या हुंडीके रूपमें स्वीकार नहीं होगा। उसी तरह जहां तक हो सके वहां तक सत्यका पालन करनेवालेकी हुंडी ईश्वरकी दुकानमें नहीं भुनाई जा सकती।

ईश्वर ख़ुद निश्चयकी, व्रतकी संपूर्ण मूर्ति है। उसके क़ायदेमें से एक अणु, एक ज़र्रा भी हटे, तो वह ईश्वर न रह जाय। सूरज बड़ा व्रतधारी है, इसलिए जगतका काल[2] तैयार होता है और शुद्ध पंचांग (जंत्री) बनाये जा सकते हैं। सूर्यने ऐसी साख जमाई है कि वह हमेशा उगा है और हमेशा उगता रहेगा, और इसीलिए हम अपनेको सलामत मानते हैं। तमाम व्यापारका आधार एक टेक पर रहता है। व्यापारी एक-दूसरेसे बंधे हुए न रहें, तो व्यापार चले ही नहीं। यों व्रत सर्वव्यापक, सब जगह फैली हुई चीज़ दिखाई देता है। तब फिर जहां अपना जीवन गढ़नेका सवाल हो, ईश्वरके दर्शन करनेका प्रश्न हो, वहां व्रतके बग़ैर कैसे चल सकता है? इसलिए व्रतकी ज़रूरतके बारेमें हमारे दिलमें कभी शक पैदा ही न होना चाहिये।

---

१. जुमला। २. वक़्त, समय।

परिशिष्ट

[‘ मंगल-प्रभात ’ के पढ़नेवालोंके लिए उपयोगी होगा, ऐसा मानकर आश्रमकी नियमावलिसे नीचेका हिस्सा यहां दिया गया है।]

१. सत्य

साधारण व्यवहार–कारोबारमें झूठ न बोलना या नहीं बरतना इतना ही सत्यका अर्थ नहीं है । लेकिन सत्य ही परमेश्वर है और उसके सिवा दूसरा कुछ नहीं है । उस सत्यकी खोज और पूजाके लिए ही दूसरे सब नियमोंकी ज़रूरत रहती है और उसीमें से वे निकले हैं । इस सत्यके उपासक, पुजारी अपनी कल्पनाकी देशकी भलाईके लिए भी झूठ न बोलें, न बरतें । सत्यके ख़ातिर वे प्रह्लादकी तरह माता-पिता वग़ैरा बुज़ुर्गोंकी आज्ञाका भी अदबसे[1] भंग करनेमें धर्म समझें ।

२. अहिंसा

प्राणियोंको जानसे न मारना इतना ही इस व्रतके लिए बस नहीं है। अहिंसाका मतलब है बहुत छोटे जीव-जंतुओंसे लेकर मनुष्य तक सब जीवोंके लिए समभाव — बराबरीका, अपनेंपनका भाव । इन व्रतोंका पालन करनेंवाला घोर अन्याय[2] करनेंवाले पर भी ग़ुस्सा न करे, लेकिन उस पर प्रेमभाव रखे, उसका भला चाहे और भला करे । लेकिन प्रेम करते हुए भी वह अन्याय करनेंवालेके अन्यायके बसमें

१. विनयसे। २. बेइन्साफ़ी।

न हो, उसके अन्यायका विरोध करे और ऐसा करते हुए जो कष्ट[1] वह दे, उसे धीरजके साथ और अन्याय करनेवालेसे द्वेष किये बग़ैर सहन करे।

३. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यके पालनके बिना ऊपरके व्रतोंका पालन नामुमकिन है। ब्रह्मचारी किसी स्त्री या पुरुष पर बुरी निगाह न डाले इतना ही बस नहीं है, लेकिन मनसे भी विषयोंका विचार या भोग न करे। और विवाहित[2] हो तो वह अपनी स्त्री या अपने पतिके साथ विषय-भोग[3] न करे, लेकिन उसे मित्र समझ कर उसके साथ निर्मल संबंध रखे। अपनी या दूसरी स्त्रीको या अपने पति या दूसरे पुरुषको विकारसे छूना या उसके साथ विकारी बातचीत या दूसरी विकारी चेष्टा[4] करना भी स्थूल[5] ब्रह्मचर्यका भंग है। पुरुष-पुरुषके बीच या स्त्री-स्त्रीके बीच या दोनोंकी किसी चीज़के बारेमें विकारी चेष्टा भी स्थूल ब्रह्मचर्यका भंग है।

४. अस्वाद

आदमी जब तक जीभके रसोंको नहीं जीतता, तब तक ब्रह्मचर्यका पालन बहुत मुश्किल है, ऐसा अनुभव होनेसे अस्वादको एक अलग व्रत माना गया है। भोजन सिर्फ़ शरीरको निभानेके लिए ही करना चाहिये, भोगके लिए हरगिज़ नहीं। इसलिए उसे दवा समझकर संयमसे खानेकी

१. तकलीफ़। २. शादीशुदा। ३. शहवत। ४. हरकत। ५. बाहरी, मोटा।

ज़रूरत है। इस व्रतका पालन करनेवाला विकार पैदा करनेवाले मसालों वग़ैराको छोड़ दे। मांस खाना, शराब पीना, तम्बाकू पीना, भांग पीना वग़ैराकी आश्रममें मनाही है। इस व्रतमें स्वादके लिए दावतकी या भोजनके आग्रहकी मनाही है।

५. अस्तेय (चोरी न करना)

दूसरेकी चीज़ उसकी इजाज़तके बिना न लेना, इतना ही इस व्रतके पालनके लिए काफ़ी नहीं है। जो चीज़ जिस कामके लिए मिली हो उसका उससे दूसरा उपयोग करना या जितनी मुद्दतके लिए मिली हो उससे ज़्यादा मुद्दत तक उसे काममें लाना भी चोरी है।

इस व्रतके मूलमें सूक्ष्म सत्य तो यह रहा है कि परमात्मा प्राणियोंके लिए रोज़की ज़रूरतकी चीज़ें ही रोज़ पैदा करता है और उन्हें देता है। उससे ज़्यादा ज़रा भी पैदा नहीं करता। इसलिए आदमी अपनी कमसे कम ज़रूरतसे ज़्यादा जो कुछ भी लेता है वह चोरीका लेता है।

६. अपरिग्रह (जमा न रखना)

अपरिग्रह अस्तेयके भीतर ही आ जाता है। बेज़रूरी चीज़ जैसे ली नहीं जा सकती, वैसे उसका संग्रह भी नहीं हो सकता। इसलिए जिस ख़ुराक या सरोसामानकी ज़रूरत नहीं है, उसका संग्रह इस व्रतका भंग है। जिसे कुरसीके बिना चल सकता है वह कुरसी न रखे। अपरिग्रही अपने जीवनको दिनोंदिन सादा करता जाय।

७. ज्ञात-मेहनत

अस्तेय और अपरिग्रहके पालनके लिए ज्ञात-मेहनतका नियम ज़रूरी है। और हर मनुष्य अपना गुज़ारा शरीरकी मेहनतसे करे तभी वह समाजके और अपने द्रोह[1]से बच सकता है। जिनका शरीर काम देता है और जो सयानें हो गये हैं ऐसे स्त्री-पुरुषोंको चाहिये कि हाथसे निपटाया जा सके ऐसा अपना रोज़का सारा काम ख़ुद ही निपटा लें और नाहक़ दूसरेकी सेवा न लें। लेकिन जब बच्चोंकी, दूसरे अपाहिज लोगोंकी और बूढ़े स्त्री-पुरुषोंकी सेवा करनेका मौक़ा आये, तब उसे करना समाजी ज़िम्मेवारी समझनेवाले हर इन्सानका धर्म है।

इस आदर्श[2]को सामने रखकर आश्रममें जहां मज़दूर रखे बिना काम ही नहीं चल सकता वहीं वे रखे जाते हैं, और उनके साथ मालिक-नौकरकी तरह नहीं बरता जाता।

८. स्वदेशी

मनुष्य सब-कुछ कर सकनेवाला, सर्वशक्तिमान प्राणी नहीं है। इसलिए वह अपने पड़ोसीकी सेवा करनेमें जगतकी सेवा करता है। इस भावनाका नाम स्वदेशी है। अपने पासवालोंकी सेवाको छोड़कर जो दूरवालोंकी सेवा करने या लेने दौड़ता है, वह स्वदेशीका भंग करता है। इस भावनाके पोषणसे संसार सुव्यवस्थित[3] रह सकता है। इसके भंगमें अव्यवस्था[4] रही है। इस नियमके मुताबिक़ जहां तक हो

---

१. बेवफ़ाई। २. मक़सद। ३. बाक़ायदा। ४. बेक़ायदगी।

सके, हम अपने पड़ोसीकी दुकानके साथ व्यवहार – कारोबार रखें; देशमें जो चीज़ बनती हो या आसानीसे बन सकती हो, वह हम परदेशसे न लायें। स्वदेशीमें स्वार्थ[१]के लिए जगह नहीं है। इन्सान ख़ानदानके, ख़ानदान शहरके, शहर देशके और देश जगतके कल्याण[२]के लिए कुरबान हो जाय।

९. अभय

सत्य, अहिंसा वग़ैरा व्रतोंका पालन निडरताके बिना नामुमकिन है। और आजकल जब कि सब जगह डर फैल रहा है, निडरताका चिंतन और उसकी तालीम बहुत ज़रूरी होनेसे उसे व्रतोंमें स्थान दिया गया है। जो आदमी सत्यपरायण[३] रहना चाहे, वह न तो जातपांतसे डरे, न सरकारसे डरे, न चोरसे डरे, न ग़रीबीसे डरे और न मौतसे डरे।

१०. अस्पृश्यता-निवारण (छूतछात मिटाना)

हिन्दू धर्ममें छुआछूतके रिवाजने जड़ पकड़ ली है। उसमें धर्म नहीं है बल्कि अधर्म है, ऐसा हमारा मानना है। इसलिए अस्पृश्यता-निवारणको नियमोंमें स्थान दिया गया है। अछूत माने जानेवालोंके लिए दूसरी जातिवालोंके समान ही आश्रममें स्थान है।

आश्रम जातिभेदको नहीं मानता। जातिभेदसे हिन्दू धर्मको नुक़सान हुआ है ऐसी उसकी मान्यता है। उसमें

---

१. ख़ुदग़रज़ी। २. भला। ३. सचाईपरस्त।

रही हुई ऊंच-नीचकी और छूतछातकी भावना अहिंसा-धर्मको मार डालनेवाली है। आश्रम वर्णाश्रम-धर्मको मानता है। उसमें बताई वर्ण-व्यवस्था सिर्फ़ धंधेके मुताबिक़ है ऐसा लगता है। इसलिए वर्ण-नीति पर चलनेवाला आदमी मां-बापके धंधेसे रोज़ी कमाकर बाक़ीका समय शुद्ध ज्ञान लेनेमें और बढ़ानेमें ख़र्च करे। स्मृतियोंकी आश्रम-व्यवस्था जगतका भला करनेवाली है। लेकिन वर्णाश्रम-धर्मको माननें पर भी आश्रमका जीवन गीतामें बताये हुए व्यापक[१] और भावना-प्रधान (भावनाशील, जड़ नहीं) संन्यासके आदर्शको लेकर बना हुआ होनेसे आश्रममें वर्णभेदके लिए जगह नहीं है।

११. सहिष्णुता (बरदाश्त)

आश्रमका यह मानना है कि जगतमें आजके मशहूर धर्म सत्यको प्रगट करनेवाले हैं। लेकिन वे सब अधूरे आदमीके ज़रिये प्रगट हुए हैं, इसलिए सबमें अधूरेपनकी या असत्यकी मिलावट हो गई है। इसलिए जैसे हम अपनें धर्मकी इज़्ज़त करते हैं उसी तरह हमें दूसरोंके धर्मकी इज़्ज़त करनी चाहिये। ऐसी सहिष्णुता जहां हो वहां एक-दूसरेके धर्मका विरोध[२] मुमकिन नहीं, न दूसरे धर्मवालोंको अपने धर्ममें लानेकी कोशिश मुमकिन है; लेकिन सब धर्मोंमें रहे हुए दोष[३] दूर हों ऐसी ही प्रार्थना और ऐसी ही भावना[४] हमेशा बनी रहनी चाहिये।

---

१. तंग नहीं। २. मुख़ालिफ़त। ३. ख़ामियां। ४. विचार, चाह।

शब्दोंके अर्थ

अंश – हिस्सा
अटूट – लाज़वाल
अतंद्रित – नाग़ाफ़िल
अध्याय – बाब
अनंतगुनी – बेहद
अनर्थ – बुरा काम
अनुभव – तजरबा
अनुमान – अटकल, अन्दाज़ा
अन्याय – बेइन्साफ़ी
अपंग – अपाहिज
अपरिग्रह – जमा न करना
अभय – नहीं डरना
अभ्यास – मश्क, आदत
अमुक – फ़लां
अमूर्छ – नाग़ाफ़िल
अमूर्छित – नाग़ाफ़िल
अयोग्य – नाजायज़
अल्प – नाचीज़, छोटा, थोड़ा
अवधूत – मस्ताना, फ़क़ीराना
अव्यवस्था – बेक़ायदगी, बेइन्तज़ामी
अस्तेय – चोरी न करना
अस्पृश्यता-निवारण – अछूतपन मिटाना
अस्वाद – जीभका चटकारा जीतना, ज़ायक़ेका मज़ा न लेना, ज़ायक़ेके मज़ेका ग़ुलाम न होना
अस्वाद – बेलज़्ज़ती
अहंकारी – मग़रूर, घमंडी
आग्रह – ज़ोर देना, इसरार
आचरना – बरतना
आत्महत्या – ख़ुदकुशी
आत्मा – रूह
आत्मार्थी – आत्माका कल्याण चाहनेवाला
आत्यंतिक – बिलकुल, आख़िरी, हद दरजेका
आदर्श (सं०) – मक़सद
आदर्श (वि०) – नमूनेदार
आधार – आसरा, सहारा
आभास – वहम, झूठा ख़याल, झूठा नज़ारा
आराधना – भक्ति
आरोग्य – तन्दुरुस्ती
आरोग्य-पोषक – तन्दुरुस्ती बढ़ानेवाला, सेहतबख़्श
आवरण – ढक्कन, पर्दा
आवृत्ति – एडिशन

इच्छा – मरज़ी
इन्द्रिय – हवास
उत्तरोत्तर – बराबर

उत्पत्ति – पैदाइश
उदासीनता – लापरवाही, बेपरवाही
उद्देश्य – मक़सद
उपकार – एहसान
उपद्रव करना – सताना
उपयोग – इस्तेमाल
उपवास – रोज़ा, फ़ाक़ा
उपाय – तरीक़ा
उपासक – पुजारी
उबरना – बचना, छूटना
उलटी – क़ै
एकांगी – इकतरफ़ा
ओतप्रोत – लगा हुआ, मशगूल
करुणा – रहम
कर्तव्य – फ़र्ज़
काम – नफ़्सपरस्ती, शहवत
कामधेनु – चाहा हुआ देनेवाली गाय
कायरता – बुज़दिली
कुटुम्ब – ख़ानदान
क्रोध – ग़ुस्सा
क्षय – मिट जाना
क्षीण – कम, घटा हुआ
घातक – मार डालनेवाला
चमत्कारी – जादुई, हैरतअंगेज़
चिन्तन – ग़ौर, गौरोफ़िक्र, चिन्तवन
चेष्टा – हरकत
छनजीवी – क्षणिक, फ़ानी
जड़ – सुस्त
जड़ता – सुस्ती
जनन-इन्द्रिय – जिससे बच्चा पैदा होता है वह इन्द्रिय
जातिभेद – जात जातके बीच फ़र्क़
ज्ञान – इल्म
ज्ञानपूर्वक – समझ-बूझकर
टीका-टिप्पणी – नुक्ताचीनी
तंत्र – हुकूमत
तीव्रतम पुरुषार्थ – सख़्तसे सख़्त मेहनत
तुच्छ – नाचीज़
दावत – ज्योनार
दिगम्बर – नंगा
दिव्य चक्षु – भीतरकी आंख, ज्ञानकी आंख
दुष्ट – सबसे ख़राब
दृढ़ता – मज़बूती
दृष्टांत – मिसाल
दृष्टि – नुक़्त-ए-नज़र
दोष – ख़राबी, नुक़्स, ख़ामी
द्रोह – बेवफ़ाई
द्वन्द्व – जोड़ी
द्वेष – वैर
धार्मिकता – दीनदारी
नम्रता – आजिज़ी, इकसार
नाश – ख़ात्मा
निन्दा – बदगोई
निरपवाद – ग़ैर-मुस्तसना, जिससे छूट न मिले

निराशा – मायूसी, नाउम्मेदी
निरीक्षण – निगाह
निरोगी – तन्दुरुस्त
निर्णय – फ़ैसला
निर्दोष – बेदाग़, जिसमें कुछ ख़राबी न हो
निश्चय – पक्का इरादा
निश्चय करना – ठान लेना, पक्का इरादा करना
पंचांग – जंत्री
पतिव्रता – शौहरपरस्त
पत्नीव्रती – बीबीपरस्त
परम – सबसे आला
परम अर्थ – आला काम, आला मक़सद
परमार्थ – परोपकार, दूसरेका भला, मोक्ष
परोक्ष – सीधा नहीं
पाखंड – ढोंग
पातकी – पापी
पारसमणि – ऐसी मणि जिसे छूनेसे लोहा सोना बन जाय
पावन – पाक
पिण्ड – शरीर, देह
पुरुषार्थ – मेहनत, कोशिश
पोषण – परवरिश
प्रतिज्ञा – सौगंद, क़सम
प्रदेश – इलाक़ा
प्रभात – पौ, सवेरा, भोर
प्रमाण – मिक़दार, हिस्सा
प्रमाणमें – मुक़ाबलेमें
प्रयोग – आज़माइश
प्रवचन – मानी समझानेवाली तक़रीर
प्रवृत्ति – हलचल, कारोबार, काम-काज
प्रसाद – किरपा
प्राणी – जीव
प्रायश्चित्त – कफ़्फ़ारा
प्रेरणा देना – किसीको किसी काममें लगाना, अपना ख़याल या अपनी बात दूसरेमें पैदा करना
बंधन – क़ैद
बाधा – रुकावट
ब्रह्माण्ड – विश्व, ख़ल्क
भंडार – रसदख़ाना
भंवर – जहां पानी ग़ोल चक्करमें घूमता है, भौंर
भरपेट – पेट भर जाय उतना
भविष्य – मुस्तक़बिल
भव्य – शानदार
भान – ज्ञान, सुध, ख़बर, ख़याल
भावना – ख़याल, चाह, जज़्बा
भावनाप्रधान – भावनाशील, जड़ नहीं, जज़्बातवाला
भाष्य – ब्योरेवार टीका, तफ़सीर
भेद – फ़र्क़

भोग-विलास – चैनबाजी, चैन-अमन, ऐश-आराम
भ्रष्ट होना – बिगड़ना
मंगल – कल्याणकारी
मनुष्यप्राणी – इन्सान
महत्ता – बड़ाई
महत्त्व – अहमियत
महामारी – वबा
महिमा – बड़ाई
मात्रा – मिक़दार, एक बार लेनेका प्रमाण (दवाकी ख़ुराक)
मान – इज़्ज़त, आदर
मानसिक – मनकी (मनसे की हुई)
मिथ्याचारी – ढोंगी, जिसका आचार बेकार साबित होता है
मुक्ति – आज़ादी, नजात
मूढ़ – मूरख, अज्ञान
मूल सिद्धान्त – बुनियादी उसूल
रंक – निर्धन
रजकण – ज़र्रा
रत्न-चिन्तामणि – ऐसा रतन जो जिस चीज़की इच्छा हो वह दे
रस – मज़ा, भोगकी लालसा, भोगकी तेज़ इच्छा; छह रस – कड़वा, तीखा, मीठा, खारा, खट्टा, कसैला
राक्षसी – शैतानी
राजनीतिक – सियासी
रामबाण – अकसीर, बेकार न जानेवाला
राय – राजा
राय-रंक – अमीरोग़रीब
राष्ट्रीय – क़ौमी
लक्षण – सिफ़त, पहचान, निशानी, गुण
वरण करना – पसंद करना
वाक्य – जुमला
वातावरण – फ़िज़ा
विकार – मन या शरीरका बिगाड़, नफ़्स, बुरा ख़याल
विचारणा – विचार करना
विचारधारा – विचारोंका सिलसिला
विचारशील – सोच-विचार करनेवाला
विचित्र – अजीब
विद्वान – आलिम
विनय – अदब
विमुख करना – फेर लेना
विरोध – मुख़ालिफ़त
विवाहित – शादीशुदा
विवेक – तमीज़, भलेबुरेकी परख
विशाल – वसीअ
विश्वास – यक़ीन, भरोसा
विषय – मसला
विषय – नफ़्स
विषय-भोग – शहवत
वीर्य – धातु, घात, मनी

वृत्ति – फ़ितरत
व्यभिचारी – बेवफ़ा
व्यवहार – कारोबार
व्याख्या – तशरीह
व्यापक – तंग नहीं, वसीअ
व्रत – अहद, नेम, नियम
व्रतधारी – व्रत पालनेवाला
शाप – बददुआ
शाश्वत – हमेशाका, क़ायम-ओ-दायम, लाफ़ानी
शुद्ध – सही
शून्य – सिफ़र
शून्यता – सिफ़र, बेख़ुदी
शोक – रंज, ग़म
शोभना – फबना
श्रेष्ठ – सबसे अच्छा
संकट – मुसीबत
संकल्प – पक्का इरादा
संकुचित – तंग ख़यालका
संग्रह – मजमूआ, जमाव
संपूर्ण – पूरा-पूरा
संप्रदाय – फ़िरक़ा
संयम – क़ाबू
संस्कृति – तमद्दुन
संस्था – अंजुमन
सत्यपरायण – सचाईपरस्त
सफल – कारगर
सभ्यता – तहज़ीब
समभाव – बराबरीका भाव
समर्थ – ताक़तवर
सर्वशक्तिमान – सब कुछ कर सकनेवाला
सहज – क़ुदरती तौर पर, स्वाभाविक, आसानीसे, थोड़ा
सहिष्णुता – बरदाश्त
साक्षात्कार – दर्शन, दीदार
साधन – ज़रिया
साधना – मक़सदको पानेकी कोशिश
साध्य – मक़सद
सामग्री – सामान
सामाजिक – समाजी
सार-असार – दम-बेदम
सुव्यवस्थित – बाक़ायदा
सूक्ष्म – बारीक
स्थूल – मोटा, बाहरी
स्मृति – धर्मशास्त्र, धर्मकी पुस्तक
स्वाद – लज़्ज़त, ज़ायक़ा
स्वाभिमान – अपना ग़रूर
स्वामी – मालिक
स्वार्थ – ख़ुदग़रज़ी
स्वार्थी – मतलबी
स्वीकार – तसलीम, क़बूल
हर्ष – बड़ी ख़ुशी
होमना – निछावर करना

सत्याग्रह आश्रमका इतिहास

लेखक : **गांधीजी**

इसमें सत्याग्रह आश्रम साबरमतीकी स्थापना, विकास और विविध प्रवृत्तियोंका वर्णन किया गया है। प्रस्तावनामें काकासाहब कालेलकर लिखते हैं: "इस पुस्तकको भूतकालके एक बोधप्रद प्रयोगके बयानकी हैसियतसे नहीं देखना चाहिये, बल्कि राष्ट्रपिताके द्वारा आनेवाले पांच सौ वर्षोंकी राष्ट्रीय साधनाके लिए किये गये एक स्फूर्तिदायक प्रयोगके रूपमें इसका अध्ययन करके संकल्प-बल प्राप्त करनेके लिए इस इतिहासका अध्ययन होना चाहिये।"

कीमत १.२५ डाकखर्च ०.३१

यरवडाके अनुभव

लेखक : **गांधीजी**

इस छोटी-सी पुस्तिकामें गांधीजीने भारतकी अपनी प्रथम जेलयात्रा (१९२२) के अनुभवोंका वर्णन किया है। यहां हम एक आदर्श सत्याग्रही कैदीके रूपमें गांधीजीका दर्शन करते हैं। इसमें उन्होंने जेल-अधिकारियों, कैदी-वार्डरों, सत्याग्रही कैदियों और अपने अध्ययनके बारेमें दिलचस्प बातें बतलाई हैं। जेलकी व्यवस्थामें प्रचलित तत्कालीन बुराइयों पर प्रकाश डालकर उनके सुधारकी दिशा भी उन्होंने बताई है। पुस्तकके प्रास्ताविक विभागमें गांधीजी पर चलाये गये मुकदमेकी पूरी कार्रवाई और परिशिष्ट विभागमें उनका अधिकारियोंके साथ हुआ पत्र-व्यवहार भी दिया गया है।

कीमत १.०० डाकखर्च ०.३१

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद – १४